॥ ओ३म् ॥

उन्नति की ओर

भारतवर्षीय आर्य्यकुमार-परिषद् की रजतजयन्ती स्मारक पुस्तिका

विश्वंभर घर-घर यहाँ श्रुतियों के उच्चार हों ।
धर्मोन्नति मिल हम करें, सच्चे आर्य्यकुमार हों

संपादक

डाक्टर युद्धवीरसिंह

प्रकाशक

मन्त्री, भारतवर्षीय आर्य्यकुमार-परिषद्

दिल्ली

सन् १९३८]   दयानन्दाब्द ११९   [संवत् १९९५

'पूरन आर्यकुमार बनें'

पं० नारायणप्रसाद जी 'बेताब' का आशीर्वाद

—:o:—

दुमिला

भगवान करें अब भारत के सब बालक वीर उदार बनें।
निरखें जब धर्म की ग्लानि कहीं तब साहस का अवतार बनें॥
प्रतिकूल प्रहार सहें न कभी वहिं ढाल बनें तलवार बनें।
सब आर्य-कुमार बनें न बनें पर पूरन आर्य-कुमार बनें॥

उपदेशक, लेखक, सेक्रिटरी निज मण्डल के सरदार बनें।
बनते हैं बनावट से जितने कुछ भी न बनेंगे हज़ार बनें॥
दरकार हैं चार हज़ार कहाँ परवा नहिं केवल चार बनें।
सब आर्यकुमार बनें न बनें पर पूरन आर्य-कुमार बनें॥

मुद्रक
ला० सेवाराम चावला, चन्द्र प्रिण्टिङ्ग प्रेस,
नया बाज़ार, देहली।

प्रभु के चरणों में !

जो जग में समाया है समाजा मुझ में।
आजा मेरे संसार के राजा मुझ में॥
मौजूद है तू मुझ में मगर जब है मज़ा।
मैं जान लूं यह कि आ बिराजा मुझ में॥

हरज़र्रे में हरदम में है बसेरा तेरा।
वह कुछ नहीं जिसमें नहीं डेरा तेरा॥
जब मैं भी तेरा हूँ तो दया कर इतनी।
मिट जाय मेरे दिल से यह मेरा तेरा॥

रोम-रोम में व्यापक, अणु-अणु में उपस्थित ओ! सर्वशक्तिमान पिता! हम आज तुम्हारे पवित्र चरणों में भिक्षा माँगने उपस्थित हुए हैं। भगवन्, हमारे सारे प्रयत्न असफल-से नज़र आ रहे हैं। कोशिशें बेकार-सी हो रही हैं। तुम्हारा आदेश हमने सुना। प्रभु 'सत्यंवद' और 'धर्मंचर' की आज्ञा अच्छी तरह से समझी; पर आज जब तुम्हारे सामने उपस्थित होकर निश्छल और निष्कपट भाव से अपनी आत्माओं का निरीक्षण किया—अपनी समाज की जांच की—साथियों की परीक्षा ली तो हमारा अहंकार चूर-चूर हो गया। हम पथभ्रष्ट-से हो गये। जिसे हम सत्य समझे वह हमारी भूल निकली; जिसे हम धर्म समझे थे, वह हमारा अज्ञान निकला। धर्म और सत्य के नाम

से हमने क्या-क्या कुकृत्य किये इन का क्या बखान करें ?

इसलिए देवों के देव, अनन्त सत्य के भण्डार, धर्म के रक्षक—शरणागतों के प्रतिपालक ! आज तुमसे यही भिक्षा माँगते हैं कि अनन्तकाल तक, जब तक सूर्य और चाँद की ज्योति जगमगाती रहे, जबतक पृथ्वी और आकाश क़ायम रहें; जबतक वायु और जल तुम्हारी आज्ञा से संसार को लाभ पहुंचाते रहें, तब तक हम अबोध आर्य कुमारों की आत्माओं को अपने अपूर्व प्रकाश से प्रकाशित करना—सत्यपथ पर आरूढ़ करना और ऐसी बुद्धि प्रदान करना कि हम धर्म को अधर्म से-सुमति को कुमति से, ज्ञान को अज्ञान से—विद्या को अविद्या से सदा पहिचान सके और पहिचान कर धर्म के मार्ग पर—सत्य के पथ पर अटल और अचल भाव से डट सकें।

. हम इस परतन्त्र देश के बालक कितने दुःखों से दुःखी होकर तुम्हारी कृपा की भिक्षा माँगने आये हैं। तुम्हारी कृपा के बिना कब किसने बल, और शक्ति प्राप्त की है। कृपा कीजिये और आज हमें शक्ति दीजिये कि कष्ट, कठिनाइयों और बाधाओं को पार कर हम वो "सब कुछ" करने में समर्थ हों जिससे हम शरीर, आत्मा समाज और देश की स्वतन्त्रता प्राप्त करते हुए संसार में अभ्युदय, शान्ति और सुख को सर्वत्र फैला सकें।

पाठकों की सेवा में !

बड़े-बड़े देशों और जातियों के उत्थान और पतन के इतिहास पर दृष्टि डालने से पता चलता है कि जिस प्रकार आँधी या तूफ़ान आने के पूर्व सख्त गर्मी पड़ा करती है, उसी प्रकार उन देशों या जातियों में क्रान्ति उत्पन्न होने के पूर्व नवयुवकों के आचार-निर्माण के आन्दोलन भिन्न-भिन्न रूप में चलते रहे हैं। किसी भी महान् पुरुष ने जब कभी किसी जाति को पलटा दिया है, तो उसने देश के बच्चों को कभी नहीं भुलाया है। महर्षि दयानन्द ने भी न केवल 'सत्यार्थप्रकाश' तथा अन्य पुस्तकों में बालकों तथा कुमारों की शिक्षा के सम्बन्ध में पृथक-पृथक् अध्याय लिखे हैं, बल्कि अपने व्याख्यानों, नियमों, उपनियमों में भी आचार-निर्माण पर बड़ा ज़ोर दिया है। जाति का आचार और चरित्र जाति के शिक्षणालयों में बनता है। बचपन में जो चरित्र-निर्माण हो जाता है, वह बड़ी उम्र में कदापि नहीं हो सकता। ऐसे ही भावों से प्रेरित होकर और अपने नवयुवकों की तत्कालीन अवस्था को देखकर आज से लगभग ३० वर्ष पूर्व स्वनामधन्य स्वर्गीय डॉक्टर केशवदेव जी शास्त्री ने आर्य्य-समाज के अन्तर्गत आर्य्य-कुमारों के चरित्र-निर्माणार्थ इस भारतवर्षीय आर्य्यकुमार-परिषद् नामी संस्था की स्थापना की थी। इस संस्था और इसके आधीन स्थापित कुमार-सभाओं आदि ने कब-कब किन-किन युवकों के चरित्र निर्माण में सहायता दी है, इसका कोई लेखा (Record) तैयार नहीं है और न किया ही जा सकता है। लेखक को आर्य्य-कुमार परिषद् और

आर्य्यकुमार सभाओं के संगठन से अपने टूटे-फूटे चरित्र निर्माण में बड़ी भारी सहायता ही नहीं मिली है, बल्कि इसी संस्था की बदौलत चरित्र-निर्माण हुआ है। और इसी प्रकार कब-कब कितने कुमारों और युवकों ने इस संस्था के अधीन उत्साह और आनन्द प्राप्त करते हुए अपने चरित्रों के निर्माण किये हैं—यह बात कभी किसी रिपोर्ट में न छपी है और न छापी जा सकती है। मगर यह कितना शानदार काम है !!

इसी चीज़ को दृष्टि में रखते हुए अपनी इस रजत-जयन्ती के अवसर पर यह पुस्तक प्रकाशित करने का जब परिषद् ने विचार किया, तो यही निश्चय किया कि इस पुस्तक द्वारा आर्य्य-कुमारों को चरित्र-गठन की ही शिक्षा मिलनी चाहिये। अनेक विद्वानों से इसके लिए प्रार्थना की गयी। उनमें से जिन्होंने कुमारों के चरित्र-निर्माण के कार्य को आवश्यक समझा, उनके उपदेश आगे के पृष्ठों में आर्य्य-कुमार पढ़ेंगे। अनेक नेताओं ने समयाभाव से या इस कार्य्य को हीन समझकर अपना उपदेश भेजने की कृपा नहीं की—इसका हमें दुःख है। फिर भी इस पुस्तक को यथाशक्ति कुमारों के लिए मनोरञ्जक और उपदेश-प्रद बनाने का प्रयत्न किया गया है। पूर्ण आशा है कि रजत-जयन्ती की यह स्मारक पुस्तिका आर्य्य-कुमारों को "उन्नति की ओर" ले जाने में सफल होगी। जिन-जिन सज्जनों ने इस पुस्तक के सम्पादन में अपने अमूल्य लेख भेजकर सहायता की है, उनको हम हार्दिक धन्यवाद देते हैं।

किसने क्या लिखा है ?

॥ ओ३म ॥

वेद-प्रवचन

स्तुता मया वरदा वेदमाता प्रचोदयन्ताम् पावमानी द्विजानां । आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्त्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसं मह्यं दत्वा व्रजत ब्रह्मलोकम् ॥

उतत्त्वः पश्यन्न न ददर्श वाचमुत त्वः श्रृण्वन्न श्रुणोत्येनाम् ॥ ऋग्वेद १०। ७॥

They seeing see not; and hearing they hear not.

धियो यो नः प्रचोदयात्

ओ३म् अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।

तमसो मा ज्योतिर्गमय । असतोमा सद्गमय ॥

Lead Kindly Light, lead Thou me on.

* * *

आत्मा की पीड़ा

मुझे एक पीड़ा है—मेरी कामना। यह कैसे सिद्ध होगी? मेरी कामना के अनेक रूप हैं। लोकैषणा सबसे प्रबल है। इस ईषणा ने मेरे मन के दीपक को बुझा दिया है। मेरे घर को घुप अँधेरे से भर दिया है। पर तब भी ईषणा बड़ी प्रबल है। मैं स्वयं निःशक्त हूँ। मेरी स्वाधीनता नष्टप्राय होचुकी है। संसार मुझे महान पुरुषों की श्रेणी में गिनता है, अथवा मैं अपने को महान समझकर अपने को धोखा दे लेता हूँ। कम से कम नेता, पण्डित, आचार्य इत्यादि की श्रेणी में तो हूँ ही। पर मैं कहाँ चला जा रहा हूँ? क्या मैं स्वयं अपनी शक्ति, अपने मन की प्रेरणा से चल रहा हूँ? मुझे नहीं मालूम। हाँ, ऐसा जान पड़ता है कि एक नशा है, जिसने मेरी नैसर्गिक शक्तियों को शिथिल कर दिया है। मेरी आँखें खुली हैं, पर मैं देखता नहीं। मेरे कान भी सुनते हैं, पर उनका सन्देश मुझ तक नहीं पहुँच पाता। मैं स्वयं न देख-सुन रहा हूँ, न चल रहा हूँ। मेरे चारों तरफ़ एक दौड़ चल रही है। मैं भी बिना सोचे-विचारे इस दौड़ में शामिल होगया हूँ। मैं इस प्रकार चला जा रहा हूँ मानो कोई शक्ति मुझे पीछे से धकेल रही हो। पर उस दौड़ का वास्तविक मूल्य क्या है, यह मुझे पता नहीं। इस दौड़ में

शामिल रहने के लिए मुझे क्या मूल्य देना पड़ता है, इसका अन्दाज़ा करने की शक्ति भी मेरे अन्दर से गुम होगयी है। यह दौड़ ही मेरे लिए परम धर्म—परम कर्त्तव्य होगयी है। और धर्म के नाम पर सब कुछ उचित है। मैं महाभारत पढ़ता हूँ और अपने को समझा लेता हूँ कि क्या योगिराज कृष्ण और धर्मराज युधिष्ठिर ने धर्म के लिए झूठ नहीं बोला। अतएव अपने कामों की कसौटी मुझे मिल गयी है। ठीक है; पर मेरी पीड़ा कम नहीं होती! मेरी वेदना का कोई अन्त नहीं—बढ़ती ही जाती है !!

क्यों ? मैं वेदमाता के परिवार से—उनके आशीर्वाद से दूर होता जाता हूँ।

इसी अवस्था का नाम है—कान होते हुए भी न सुनना, आँख होते हुए भी न देखना, बुद्धि होते हुए भी न समझना। जहाँ विवेक नहीं—व्यवसायात्मिका बुद्धि नहीं, वही पीड़ा है। विवेक-शून्य मन ऐसा ही है, जैसा एक ज्योति-शून्य भवन !

तमसो मा ज्योतिर्गमय। असतो मा सद्गमय।

ज्योतिप्रद भगवन ! मुझे अँधेरे से उजाले में, असत् से सत की ओर ले जाओ। इस हृदय की अन्धकारमय कोठरी में आओ तो इस में उजाला हो। मैं आपके निकट आता जाऊँ, तब ही तो वेदना का अन्त होगा ! पर हो

कैसे—निकट पहुँचूँ क्योंकर ? ज्योति के पुञ्ज की ओर चढ़ूँ क्योंकर ? तुम ही पथ-प्रदर्शन करो।

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।

हे अग्ने, हे प्रकाश-स्वरूप ! तुम ही मुझे उस सुमार्ग पर चलाओ; जिससे मैं समस्त उत्तम कर्मों एवं विज्ञान आदि गुणों को प्राप्त करूँ । सुपथ किस ओर है—कितनी दूर है, यह मैं क्या जानूँ ? जहाँ सैकड़ों नहीं- हजारों रास्ते एक ही जगह मिलते दीख पड़ते हैं, वहाँ मैं किस ओर चलूँ । समस्या बड़ी गहन है । ये अनेक मार्ग मिलकर मुझे भटकाने पर उतारू हैं । अनेक शास्त्र हैं, अनेक स्मृतियाँ हैं और उनसे भी अधिक प्रबल सामयिक रीति-रिवाज के आडम्बर हैं, पर सबसे भयावह, नेतागण के अनेक अस्त-व्यस्त 'उपदेश' हैं । इन सबका अनुगामी बनूँ ? नहीं, इससे तो भय लगता है । तब—

Lead Kindly Light Lead thou me on.

तुम ही आओ, अपने प्रकाश से इस अन्धकारमय मन्दिर को भर दो और अपनी अनुकम्पामय ज्योति से मेरा पथ-प्रदर्शन करो । बल दो, शक्ति दो कि मैं स्मार्त और श्रौत मार्ग में विवेक कर सकूँ । सांसारिक कर्मों का

वास्तविक मूल्य निर्णय कर सकूँ। समस्त वस्तुओं के आपेक्षिक मूल्य का अनुमान कर सकूँ। अतएव एक ही वर एक ही भिक्षा माँगूँगा। यही मेरी पीड़ा है, यही मेरी साधना !

धियो यो नः प्रचोदयात् ।

शक्ति, विवेक, मेधा ! क्या मेरी कामना सिद्ध न होगी ?

आर्य-कुमार क्या हैं ?

[१]

अहो ! अरुण के आगम के सम नव प्रकाश करनेहारे !
अविरत अनुपम अतुल उषा में भव्य प्रभा भरनेहारे !
मञ्जु मरीची से समाज-सर में सुखमा धरनेहारे !
मानव-हृत-सरसिज विकसित कर शोक-निशा हरनेहारे !!

२]

अहो ! दिव्य स्वर्गीय विटप के कलित कुसुम क्या टूट पड़े ?
अथवा सुधा-सिन्धु-सीपी से मुक्तामणि-गण फूट पड़े ?
अथवा प्रखर प्रचण्ड प्रभाकर के प्रस्फोटित खण्ड बड़े ?
चारु चन्द्रमस चमत्कार के काम्य कलेवर कान्ति जड़े ?

[३]

भारत-भू-भ्रमणार्थ अवतरित क्या सुरगण के बालक हो ?
या नचिकेता ऋषि-कुमार हो औपनिषद् उद्दालक हो ?
नव स्फूर्ति हो, मंजु मूर्ति हो प्रेम-पुञ्ज प्रतिपालक हो ?
चक्रव्यूह संसार-समर के सौभद्रक सञ्चालक हो ?

[४]

अथवा ज्योतिर्मय ज्वाला हो पातक-पुञ्ज-प्रजारक हो ?
धर्म क्रान्ति की चिनगारी क्या अनघ ओघ-संहारक हो ?
वैदिक वायु-विश्व में बनकर मुग्ध सुरभी सञ्चारक हो ?
अथवा प्रभु-प्रेमाप्लावन हो पावन पुण्य प्रसारक हो ?

[५]

अहो ! अतुल अवतार ओज के निष्ठा के नट-नागर हो ?
आशा के आगार आप वा सत्साहस के सागर हो ?
निर्भयता की निश्चल निधि हो वा उमङ्ग के आकर हो ?
जीवित ज्वालामुखी-जोश के वा प्रस्फूर्ति प्रभाकर हो ?

[६]

क्या उत्साह अनल भट्टी के तुम जलते अङ्गारे हो ?
अथवा मृदुता-मन्दाकिनि के तुम कमनीय कगारे हो ?
अथवा संक्षोभित सागर की लहरों के बम्भारे हो ?
वा प्रचण्डतम वायु बवंडर के अखण्ड भण्डारे हो ?

[७]

वृद्धजनों की आशा-पूरित आँखों के तुम तारे हो ?
दीनदुखी असहाय अनाथों के सर्वस सहारे हो ?
तमसावृत हृदयों के अथवा अति उज्ज्वल उजियारे हो ?
वैदिक-बोध वारि-धारा के अथवा कूल किनारे हो ?

[८]

अथवा आर्य-जाति की जर्जर नौका के पतवारे हो ?
अथवा देश-वाटिका के तुम सजग सुभट रखवारे हो ?
आरत भारतमाता के वा दुखहर दिव्य दुलारे हो ?
तुम्हीं बताओ आर्य-कुमारो ! क्या हो किसके प्यारे हो ?

उन्नति का स्वरूप

वर्त्तमान समय में हरएक की रुचि उन्नति की ओर है। जितने भी विचारक संसार के किसी भी देश में हैं, वे सब अपने-अपने क्षेत्र में उन्नति प्राप्त करने का उद्योग करते रहते हैं। परन्तु उन्नति शब्द का जितना अधिक प्रयोग होता है, उतना ही इसका अभिप्राय कम समझा जाता है।

उन्नति क्या नहीं है ?

यह समझने से पूर्व कि उन्नति क्या है यह समझ लेना आवश्यक है कि उन्नति क्या नहीं है। उन्नति के लिए जो अँगरेजी में शब्द आता है, वह प्रोग्रेस (Progress) है, जिसका अर्थ यह है कि आगे बढ़ना; परन्तु वस्तुतः आगे बढ़ते चले जाना उन्नति नहीं है। उदाहरण के लिए हम इस बात को यों समझ सकते हैं—यदि किसी को

आगरे से दिल्ली जाना है और वह रेल में सवार हो। परन्तु वह दिल्ली पर न उतरकर, सीधा लाहौर चला जाय, तो क्या यह उन्नति होगी? उत्तर यही होगा कि यह उन्नति नहीं, बल्कि उन्नति से उल्टा है। वह दिल्ली में अपना काम ठीक समय पर नहीं कर सकेगा और नाममात्र के लिए आगे बढ़कर और कष्ट उठायेगा।

क्या दशा-परिवर्तन उन्नति है?

बहुत से लोगों का यह ख्याल है कि दशा के बदल जाने का नाम उन्नति है। पहले जमाने में केवल बैलगाड़ियाँ बैठने के लिए थीं; अब रेल और मोटर बैठने के लिए और हवाई जहाज उड़ने के लिए हैं। पहले कड़ुवे तेल का दीया जलाया जाता था! अब गैस और बिजली का प्रकाश है। पहले कपड़े सादा थे, अब फ़ैशन अधिक है। पहले सादा भोजन था, अब बड़े-बड़े स्वादिष्ट भोजन हैं। पहले बड़े-बड़े शफ़ाखाने, पागलखाने न थे और न दाँत बनानेवाले अच्छे थे, न चश्मा बनानेवाले। अब यह साधन हैं और बड़ी-बड़ी तेज सवारियाँ हैं। बहुत चहल-पहल और धूमधाम है। रात भी दिन के समान है और दिन में तो कान पड़ी आवाज सुनाई नहीं देती। यह सब उन्नति और सभ्यता (Culture) के चिह्न माने जाते हैं। प्रश्न यह है कि क्या यह सब उन्नति के द्योतक हैं। उत्तर यही होगा कि केवल

यह साधन उन्नति के कारण नहीं हैं। अनुभव से यह पता चलता है कि जितने यह साधन बढ़ते चले जाते हैं, उतने ही दुःख, अशान्ति और क्लेश भी बढ़ते जाते हैं।

पता चलता है कि न आगे बढ़ना उन्नति है और न दशा-परिवर्तन।

फिर उन्नति क्या है ?

उन्नति के लक्षण से पूर्व दो शब्दों का समझ लेना आवश्यक है—वह शब्द प्रोग्रेस (Progress) और रिफ़ॉर्म (Reform) हैं। प्रोग्रेस (Progress) के माने आगे बढ़ना है, इससे किसी लक्ष्य की ओर संकेत होता है—किसी मंज़िल का पता चलता है। रिफ़ॉर्म (Reform) शब्द से भी तीन बातें प्रकट होती हैं (१) पहले कोई रूप था; (२) उस रूप में बिगाड़ आ गया। (३) अब दुबारा उसको फिर बनाना है या वही पुराना रूप देना है। इन दोनों शब्दों को मिलाकर विचार करने से यह पता चलता है कि लक्ष्य-सिद्धि के लिए हमको भूत और भविष्यत्—दोनों पर दृष्टि रखनी होगी, और दोनों को लक्ष्य में रखकर अपना वर्त्तमान कार्यक्रम निश्चित करना होगा।

उन्नति उद्देश्य की पूर्ति या लक्ष्य की सिद्धि है।

उद्देश्य या लक्ष्य क्या है ?

हमें यहाँ मानव-जीवन की उन्नति पर विचार करना है, इसलिए मानव-जीवन का लक्ष्य क्या होना चाहिये, इस पर विचार करना आवश्यक है। जो चीज़ जिस काम के लिये बनाई गई है उस काम के लिए उस चीज़ को उपयोगी बनाना उसकी उन्नति या लक्ष्य की सिद्धि है। इस लिए मानव-जीवन के लक्ष्य पर विचार करने से पूर्व हमें ज़रा गहराई में जाकर इस बात पर विचार करना होगा कि मनुष्य क्या है।

मानव जीवन

विचार से पता चलता है कि मनुष्य की जीवात्मा के निम्नलिखित स्वाभाविक लक्षण हैं—

(१)	ज्ञान	
(२)	इच्छा	कर्म।
(३)	द्वेष	
(४)	प्रयत्न	
(५)	सुख	भोग।
(६)	दुःख	

अर्थात् मनुष्य अन्य प्राणियों से अधिक ज्ञानवान् है—उसके अन्दर ज्ञान प्राप्त करने की शक्ति है। उस ज्ञान से वह कर्म करता है, किसी चीज़ की प्राप्ति की इच्छा

करता है या किसी दुःख के कारण को दूर करने की। इच्छा और द्वेष के कारण उसको प्रयत्न करना पड़ता है, इसका नाम ही कर्म है। प्रयत्न चाहे प्राप्ति के लिए हो या दूर करने के लिए! उसका दो ही प्रकार का परिणाम हो सकता है—अगर प्रयत्न सफल होगा तो उसका परिणाम सुख होगा। यदि असफल होगा तो दुःख होगा। इसी सुख और दुःख का नाम 'भोग' है और यह प्रयत्न रूपी कर्मों का फल है।

मनुष्य के लिए लक्ष्य-सिद्धि के वे साधन हो सकते हैं जो ज्ञान की प्राप्ति में साधक हो, कर्म करने में अधिक सफल बनावें और भोग को मर्यादित कर दें एवं इस प्रकार मनुष्य के लिए हर प्रकार से उन्नति के साधन एकत्रित कर दें।

यदि कोई उपाय ज्ञान के स्थान में अज्ञान बढ़ाएँ; कर्म के स्थान में आलस्य में वृद्धि करें और भोग को मर्यादित करने के बजाय और उलझनें डालें, तो वह उन्नति के नही अवनति के कारण होगे।

ज्ञान

ज्ञान जीवात्मा का स्वाभाविक गुण है। मन, बुद्धि और ज्ञानेन्द्रियाँ इसको ज्ञान-प्राप्ति के लिए दी गई हैं। ईश्वर ज्ञान का भाण्डार है अर्थात् आदिस्रोत है। मनुष्य को

इन पदार्थों का ज्ञान प्राप्त करना है—(१) ईश्वर का; (२) अपने-आपके विषय में; (३) प्रकृति के विषय में (प्रकृति के अन्तर्गत संसार के सब पदार्थ आजाते हैं); (४) इनके पारस्परिक सम्बन्ध के विषय में।

सम्प्रति ज्ञान की वृद्धि के अनेक साधन हैं। विज्ञान बढ़ रहा है, साहित्य में वृद्धि हो रही है. समाचार-पत्र दिन-प्रति-दिन बढ़ते जाते हैं। रेडियो, तार और बिना तार के तार—सब ज्ञान-वृद्धि के कारण हैं। परन्तु यह सब साधन अधूरे हैं। हम जितना अधिक दुनिया की बातों को जानते जाते हैं, उतना ही अधिक हम अपने-सम्बन्धी ज्ञान से विमुख होते जाते हैं। जब हम अपनी ओर ही ध्यान नहीं देते, तो ईश्वर की ओर, जो अधिक सूक्ष्म है, ध्यान देना बहुत कठिन है। इस अधूरे ज्ञान का ही परिणाम धर्म और विज्ञान का युद्ध है। इस विज्ञान ने वह भयङ्कर परिस्थिति उत्पन्न कर दी है कि संसार में हाहाकार मचा हुआ है। हत्याकाण्ड के नये-नये उपाय निकाले जाते हैं और इसके सहारे मनुष्य मनुष्य के ख़ून का प्यासा बना हुआ है और एक जाति दूसरी जाति की शत्रु बनी हुई है। वास्तविक ज्ञान की वृद्धि का कारण 'स्वाध्याय' है। इसलिए योग-दर्शन में स्वाध्याय को सबसे पहला और सबसे उत्तम साधन बतलाया हैं।

ज्ञान की उन्नति पर कर्म और भोग की मर्यादा आश्रित है और इसके साथ ही कर्म और भोग के उन्नति के साधन भी योग-दर्शन में बतलाये है।

कर्म

कर्म के लिए 'शौच' और 'तप' की आवश्यकता है। शौच से अभिप्राय हर प्रकार की सफ़ाई है अर्थात् दिल की, दिमाग़ की और आत्मा की। तप से अभिप्राय मेहनत, जफ़ाकशी और परिश्रम है। ईमानदारी से काम करना और बिना थके काम करना कर्म को मर्यादा में रखता है। बिना ईमानदारी और मेहनत के कर्म सफल नहीं हो सकते। मलिन हृदय से बड़े-से-बड़ा परिश्रम भी निष्फल होजाता है।

भोग

भोग कर्म द्वारा ही होता है। भोग कर्मों के अन्तर्गत है। भोग संसार के पदार्थों से हमारा सम्बन्ध निश्चित करता है। भोग का प्रकार परमात्मा ने यह रखा है कि वह संसार के पदार्थों को हमारे कर्मों के अनुसार नहीं देता—कम देता है या अधिक देता है।

अग्नि, जल, वायु, पृथिवी और आकाश कर्म के क्षेत्र हैं और इन्हीं से भोग की मर्यादा बनाई जाती है। सफलता की दशा में हमको सुख प्रतीत होता है। यदि सफलता

प्राप्त होने पर हम ईश्वर पर भरोसा नहीं करेंगे तो हमारे अन्दर अभिमान आ जायगा। अभिमान के आते ही सुख-प्राप्ति की इच्छा प्रबल होगी और सुख दुःख में बदल जायगा। इसी प्रकार असफलता की दशा में सन्तोष हमारे लिए अनिवार्य है। सन्तोष से बड़े-से-बड़ा दुःख सहन किया जा सकता है और दुःख सुख का रूप धारण कर लेता है। इसलिए भोग के सम्बन्ध में दो उन्नति के नियम—सन्तोष और ईश्वर पर निधान हैं।

अभी तक हमने मनुष्य की मुख्यतः व्यक्तिगत उन्नति के साधनों पर विचार किया है और वह निम्न प्रकार है—

(१) स्वाध्याय ज्ञान के अभिप्राय से, और शौच और तप कर्म की दृष्टि से, और सन्तोष और ईश्वर पर निधान भोग को लक्ष्य में रख कर। यह प्राचीन पाँच नियम हैं। इनकी अवहेलना हमारे लिए हानिकारक है। जिस अंश में हम इनकी अवहेलना करेंगे उतने ही अंश में हम दुःखी होंगे। इससे पता चलता है कि विज्ञान के साथ धार्मिक जीवन की आवश्यकता है और धर्म की शिक्षा उन्नति का मुख्य साधन है। उन्नति के वर्त्तमान युग में धर्म से विमुख होना हमारी बर्बादी का कारण है। न हमारा ज्ञान ठीक रहा है और न कर्म ठीक है। उन्नति के

'राष्ट्र पिता महात्मा गांधी'

पथ पर चलनेवालों को उपरोक्त सब उपायों को लक्ष्य में रखना चाहिये।

मनुष्य सामाजिक जन्तु है

कोई मनुष्य अकेला रहकर अपना जीवन व्यतीत नहीं कर सकता। उसको औरों से मिलकर रहना होगा और चलना होगा। इसलिए वास्तविक सुख उस समय प्राप्त होगा जब न केवल हमारा व्यक्तिगत-जीवन सुखी हो, बल्कि हमारा सामाजिक-जीवन भी सुखमय और मर्यादित हो।

सामाजिक जीवन को उन्नत बनाने के लिए यह पाँच साधन आवश्यक हैं—(१) सत्य; (२) ब्रह्मचर्य; (३) अहिंसा; (४) अस्तेय; और (५) अपरिग्रह।

ज्ञान की वृद्धि के लिए सामाजिक जीवन में सत्य के व्यवहार की आवश्यकता है। केवल यही पर्याप्त नहीं है कि हम स्वाध्याय से अपने लिए ठीक-ठीक ज्ञान प्राप्त करें; बल्कि यह भी आवश्यक है कि हम दूसरों को इस ज्ञान का सत्य-सत्य रूप बतलायें; सत्य ज्ञान का व्यावहारिक रूप सत्य है। इसके बिना स्वाध्याय निष्प्रयोजन है।

कर्म का व्यावहारिक रूप ब्रह्मचर्य और अहिंसा है। व्यक्तिगत दृष्टि से यदि कर्म के लिए शौच और तप की आवश्यकता है तो सामाजिक दृष्टि से ब्रह्मचर्य और अहिंसा की! हमारे आचरण दूसरों के सम्बन्ध में धार्मिक होने

चाहियें और तप करते समय हमें यह बात ध्यान में रखनी चाहिये कि हम दूसरों को अपने मन, वाणी और कर्म से किसी प्रकार भी दुःख न पहुँचायें—इसी का नाम अहिंसा है। यदि तप के जोश में हमने हिंसा और अहिंसा का ध्यान न रखा तो परिणाम अच्छा न होगा !!

भोग का व्यावहारिक रूप भी हमें दृष्टि में रखना चाहिये। असफलता की दशा में हमें सन्तोष करना चाहिये; नहीं तो हम घबराकर दूसरों की चीज़ चुरा लेंगे या दूसरों के अधिकार में हस्तक्षेप करेंगे। सामाजिक जीवन के लिए चोरी की प्रथा का मिट जाना अत्यन्त आवश्यक है। ब्रह्मचर्य के न होने से चरित्र के विरुद्ध पाप (Sins against morals) होते हैं; चोरी की प्रथा बन्द न होने से सम्पत्ति के विरुद्ध पाप (Sins against property) होते हैं और दोनों का ही परिणाम बड़ा भयङ्कर है।

सफलता की दशा में हमें व्यक्तिगत रूप से अभिमान से बचने की आवश्यकता है। इसका व्यावहारिक रूप अपरिग्रह है। यदि हमने भोग-पदार्थ अपने पास कंजूसी से रोककर रख लिये तो हमारे अन्दर मिथ्या विचार और लोभ पैदा होगा और दूसरों को हम उन पदार्थों के सुख से वञ्चित रखेंगे।

यदि ग़रीबों में सन्तोष और अमीरों में अपरिग्रह आ जाय तो आज सत्य साम्यवाद का प्रचार हो सकता है। भेद पूर्वजन्म से सम्बन्धित है। हमको भोग-पदार्थ कर्मों के अनुसार मिलते हैं और उन कर्मों का सम्बन्ध पूर्वजन्म से भी है। भोग बराबर-बराबर नहीं हो सकते। हाँ, उपरोक्त उपायों से मर्यादित हो सकते हैं!

प्रबल शत्रु

काम, क्रोध, मद और लोभ को प्रबल शत्रु कहा गया है। यह क्यों? काम से ब्रह्मचर्य और शौच में बाधा पड़ती है। क्रोध से तप और अहिंसा झगड़े में पड़ जाते हैं। लोभ से सन्तोष बिगड़ जाता है, और चोरी के भाव आ जाते हैं। लोभ कंजूसी सिखाता है और ईश्वर पर भरोसा नहीं करने देता। इसलिए यह भाव हमें छोड़ देने चाहियें अर्थात् काम, क्रोध, मद और लोभ से बचते रहना चाहिये। नियमों का व्यावहारिक रूप यम हैं। मृत्यु को यमराज का दूत कहते हैं। यदि हम इन नियमों और यमों का ठीक-ठीक पालन नहीं करेंगे तो यह मृत्यु हमको जन्म-मरण के चक्कर में डालकर यम पालन करना सिखलायेगी और इसीलिए आवागमन हमारे सुधार का साधन है।

हमारा लक्ष्य क्या है?

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति। धर्म से अभि-

प्राय ज्ञान और कर्म की मर्यादा से है। ज्ञान और कर्म ठीक होने से हमें अर्थ की प्राप्ति होगी अर्थात् भोग-पदार्थ ठीक-ठीक प्राप्त होंगे। इनकी प्राप्ति से कामना सिद्ध होगी और कामना-सिद्धि का महान् शुद्ध स्वरूप मोक्ष है। मोक्ष उस दशा का नाम है, जब नियत समय के लिए हर प्रकार की कामना सिद्ध हो और आनन्द ही आनन्द हो !!

सर्वाङ्ग उन्नति

सर्वाङ्ग उन्नति में हमारे आचार-विचार और व्यवहार ठीक-ठीक मर्यादा के अन्दर रहने चाहियें। अङ्गरेजी में कहा है—

Thoughts control our actions and our actions lead to social conduct.

उपरोक्त नियमों के पालन करने से हमारे आचार और विचार ठीक होंगे और यमों से व्यवहार। और जिस देश और जाति में आचार-विचार और व्यवहार ठीक हों फिर उसको किसी प्रकार का दुःख का सामना नहीं करना पड़ता।

दुःख के मुख्य कारण

विचार की दृष्टि से दुःख के मुख्य कारण तीन मालूम होते हैं—(१) अभाव; (२) अज्ञान; (३) अन्याय।

हम किसी चीज़ की प्राप्ति की इच्छा करें, परन्तु वह न हो और यदि हो और हमें मालूम न हो कि वह कहाँ है और यदि चीज़ हो भी और हमको ज्ञान भी हो, फिर कोई दूसरा लेने न दे, तो भी दुःख होगा। आजकल अभाव को भाव में बदला जा रहा है। हमारी इच्छाओं की पूर्त्ति के लिए अनेक साधन काम में लाये जा रहे हैं। यदि शहरों में स्थान का अभाव है, तो सैकड़ों मञ्जिल ऊँचे मकान बनाये जा रहे हैं। दुनिया में भोग-पदार्थों की वृद्धि होरही है। उनके सम्बन्ध का ज्ञान भी बढ़ रहा है। वह पदार्थ ठीक-ठीक बढ़ जायँ इसलिए संसार में न्याय-विभाग की भी बहुत तरक़्क़ी हुई है। पुलिस, फ़ौज, अदालतें इस अन्याय को रोकने के लिए हैं।

एक विचित्र बात

अभाव को भाव में बदला जाता है। ज्ञान की वृद्धि के साधन जुटाये जाते हैं और न्याय का प्रबन्ध बढ़ता जाता है, परन्तु फिर भी अभाव भी बढ़ रहा है, अज्ञान भी बढ़ रहा है और अन्याय भी !!

यह क्यों ?

यह केवल इसलिए कि इन उपायों में वह बातें लक्ष्य में नहीं रखी गयीं, जो ऊपर प्राचीन साहित्य के आधार पर इस लेख में दरसायी गयी हैं। इसलिए 'मर्ज़ बढ़ता गया

ज्यों-ज्यों दवा की' वाली कहावत चरितार्थ होती है। यह दवाइयाँ रोग में वृद्धि करनेवाली हैं। वास्तविक औषधि धार्मिक जीवन—ईश्वर और जीव-सम्बन्धी सत्य ज्ञान और प्रकृति से हमारा ठीक-ठीक सम्बन्ध जान लेना है।

एक चक्र

जीव ईश्वर और प्रकृति के बीच में है। यदि जीव प्रकृति की ओर खिंचता है, तो अभिमान, ईर्ष्या, क्लेश आदि के चक्र में पड़ता है। यदि उसकी दृष्टि ईश्वर की ओर रहती है, तो उसमें नम्रता, प्रेम, शान्ति और भक्ति के भाव आते हैं और वह सुख प्राप्त करता है। इस चक्र में पड़े हुए जीव को किस ओर अपनी दृष्टि रखनी चाहिये—यह बात समझ लेनी चाहिये। यदि उसकी दृष्टि ठीक होगी, तो वह उन्नति की ओर होगा। नहीं तो अवनति का सामना करना होगा।

उन्नति का मूल मन्त्र चरित्र ही है

आर्यसमाज का भविष्य आर्य-कुमारों पर है। किसी समाज की उन्नति उसके अनुयायियों की संख्या पर इतनी अधिक अवलम्बित नहीं है, जितनी कि उनके चरित्र की पवित्रता पर। इसलिए सच्चरित्र बनना परमावश्यक है।

इस सम्बन्ध में आर्य-कुमारों से विशेष निवेदन है। सच्चरित्र का मूल-मन्त्र ब्रह्मचर्य और सचाई है। अपने व्यवहारों में सच्चा रहने का उन्हें यत्न करना चाहिये। सचाई का और मिठास का आपस में तनिक भी विरोध नहीं। जो लोग रूखेपन को सचाई का आवश्यक साथी मानते हैं, वे भूल करते हैं। इसीलिए शास्त्र में कहा है:—

सत्यम्ब्रूयात् प्रियम्ब्रूयान्न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्।
सत्यञ्च नानृतम्ब्रूयादेष धर्मः सनातनः॥

इस बात को हमारे युवकों को ध्यान में रखना चाहिये।

निर्भयता सच्चरित्र का दूसरा गुण है

इस सम्बन्ध में जो ग़लती हम युवावस्था में प्रायः करते हैं, वह यह है कि उद्दण्डता को निर्भयता का साथी मानते हैं। उद्दण्डता और निर्भयता में कोई समता नहीं है। आर्यसमाज के लिए नियन्त्रण एक आवश्यक चीज़ है। उसके बिना आर्य-समाज थोथा है। नियन्त्रण को सफल बनाने के लिए यह आवश्यक है कि साधारण जनता में उस संस्था के लिए परम भक्ति हो। भक्ति की परीक्षा तब होती है, जब निर्णय हमारे प्रतिकूल हो और तब भी उसको हम सहर्ष स्वीकार करें।

अन्त में यह बताना आवश्यक है कि सदाचार के जितने भी अङ्ग है, उनको प्राप्त करने के लिए निरन्तर प्रयत्न अति आवश्यक है। पाठ पढ़ने से या वाद-विवाद से कोई आदमी चरित्रवान् नहीं हो सकता। प्रति-क्षण घोर यत्न और आत्मनिरीक्षण से ही हम चरित्र प्राप्त कर सकते हैं। उसका मार्ग लम्बा और प्रलोभनों के काँटों से भरा हुआ रहता है; परमात्मा हमें बल दे!

शिष्टाचार

शिष्टाचार शिष्ट अथवा सज्जनों के आचरण का नाम है। सामाजिक जीवन में प्रत्येक व्यक्ति को किसी-न-किसी प्रकार के व्यवहार अथवा आचरण की आवश्यकता बनी रहती है। जब इस व्यवहार अथवा आचरण में मृदुता, कोमलता अथवा शिष्टता आ जाती है, तब उसे हम शिष्टाचार के नाम से पुकारते हैं।

इस देश में हमारे सामाजिक जीवन के अन्दर बहुत-कुछ रूखापन तथा कठोरता का अंश देखने में आता है। एक-आध प्रान्त को छोड़कर प्रायः सभी प्रान्तों में हमारे देशनिवासियों के व्यवहार में वे बातें नहीं मिलतीं, जिन्हें शिष्टाचार के नाम से पुकारा जाता है। बात यह है कि इस देश में शिष्टाचार की शिक्षा की ओर ध्यान भी नहीं दिया जाता। जहाँ अन्य देशों में बच्चों को शिष्टाचार

की शिक्षा प्रारम्भ से ही दी जाती है, वहाँ इस देश में शिष्टाचार के महत्व को ही नहीं समझा गया। यह ठीक है कि हमारे शास्त्रों में शिष्टाचार के नियम दिये गये हैं, परन्तु उन नियमों से क्या लाभ जिनको हम अपने आचरण में नहीं लाते। हमारे बच्चों को इस बात का ज्ञान नहीं कि उन्हें अपने माता-पिता, गुरुजनों अथवा सम्बन्धियों या अपरिचित व्यक्तियों के प्रति किस प्रकार का और कैसे व्यवहार करना चाहिये।

आर्यसमाज में भी हम बच्चों की शिक्षा में नियमित शिष्टाचार के शिक्षण का अभाव पाते हैं। यदि ऐसा न होता तो हम आर्य्य-नवयुवकों को उनके शिष्टाचार से ही पहिचान लेते। मनुष्य निस्सन्देह अपने शिष्टाचार से पहिचाना जाता है।

शिष्टाचार मृदु तथा कोमल व्यवहार का नाम है। जिस समाज में शिष्टाचार का प्रदर्शन होता रहता है, उस समाज के सभासदों के जीवन में विशेष उल्लास और मिठास बना रहता है। उस समाज के सभासद बहुत-से अवाञ्छनीय सङ्घर्षों से बचे रहते हैं और वह समाज दिनोंदिन उत्तरोत्तर उन्नति की ओर अग्रसर रहता है।

शिष्टाचारी व्यक्ति एक गन्धयुक्त पुष्प के समान अपने आचरण द्वारा चहुँ ओर अपनी गन्ध को फैलाता रहता है

और अपने साथ रहनेवालों को प्रसन्न करता रहता है। जब हम दूसरों से बातचीत करते हैं, अथवा उनके सम्पर्क में किसी रूप में आते हैं, तब हमें अपना प्रभाव उनके हृदयोंपर अङ्कित करना चाहिये। इस प्रकार दूसरों के हृदयोंपर अपने प्रभाव को अङ्कित करने में हमारा शिष्टाचार हमें बड़ी सहायता देता है।

कई बार देखने में आया है कि शिष्टाचार की कमी के कारण कई नवयुवक विशेष पदों की प्राप्ति से वञ्चित रह गये। एक योग्य तथा विद्या-सम्पन्न नवयुवक केवल इसलिए एक पद को प्राप्त न कर सका; क्योंकि जब वह अपने उच्च पदाधिकारी को मिलने के लिए गया, तो वह कमरे के अन्दर जाते समय उस कमरे के किवाड़ को धीरे से बन्द न कर सका। किवाड़ की भारी खड़-खड़ाहट ने उसके शिष्टाचार के अभाव को उस पदाधिकारी के हृदय पर ऐसा अङ्कित किया कि उसने अन्य गुणों की ओर कोई ध्यान न दिया।

हमारे छोटे-छोटे व्यवहार जिनकी ओर हम कोई ध्यान नहीं देते; वे सब हमारे व्यक्तित्व को प्रकट करते हैं और हमारे व्यक्तित्व का भला-बुरा प्रभाव दूसरों पर डालते रहते हैं। अतः इन सब छोटे-मोटे व्यवहारों को शिष्टा-चार की शृङ्खला में बाँध देना चाहिये, ताकि हमारे जीवन की सभी शक्तियाँ अपने सङ्गठित रूप में प्रकट हों। हम

परन्तु उस शिष्टाचारी राष्ट्रपति ने उत्तर दिया—माता जी, तुमने मुझे शिष्टाचार की शिक्षा दी है। इसलिए मैं तुम्हारा कृतज्ञ हूँ।

शिष्टाचार पर बहुत विस्तार से लिखा जा सकता है। यहाँ केवल आर्य नवयुवकों को यह बताना है कि शिष्टाचार एक बड़ी भारी शक्ति है। इस शक्ति के सम्पादन से हमारा जीवन बहुत ऊँचा उठ सकता है। आर्यसमाज को जो अपूर्व शिक्षा हमको प्राप्त हुई है और वैदिक संस्कृति का जो महत्व हमने समझा है, उसके पूरे-पूरे प्रदर्शन के लिए हमें शिष्टाचार की शक्ति से वञ्चित न रहना चाहिये।

मुझे यह तो मानना ही पड़ेगा आर्य-नवयुवक का सबसे बड़ा भूषण शिष्टाचार है। शिष्टाचार के द्वारा उसके सामने सभी द्वार खुल सकते हैं और वह सभी स्थानों पर आदर और स्नेह की दृष्टि से देखा जा सकता है। यदि आर्य-नवयुवक चाहते हैं कि वे संसार में विजय प्राप्त करें, कठिन दुर्गों को जीतें तथा घोर समस्यायों का हल करें, तो उन्हें शिष्टाचार की शक्ति का सम्पादन अवश्य करना चाहिये। शिष्टाचार-द्वारा प्रकट की हुई नम्रता को कई लोग कमजोरी का नाम देते हैं, परन्तु उनका यह विचार ठीक

नहीं है। नम्रता अथवा लघुता कमज़ोरी नहीं, बल्कि बड़प्पन है। एक कवि ने क्या सुन्दर बात कही है:—

'लघुता ते प्रभुता मिले, प्रभुता ते प्रभु दूर।
चींटी शक्कर खात है, कुञ्जर के मुख धूर ॥

आचारः परमो धर्मः

प्राचीन शिक्षा-प्रणाली का आदर्श सदाचार है। गुरु के लिए जो आचार्य शब्द वेदादि ग्रन्थों में आता है, उसका भी अर्थ यही है, कि जो आचार को सिखाये। शिक्षा का मुख्य उद्देश्य सदाचार और विद्याभ्यास गौण है—

Ruskin लिखता है—

Education does not mean teaching people what they do not know; it means teaching them to behave as they do not behave,

मैं आशा करता हूँ कि आर्य कुमार इस बात का ध्यान रक्खेंगे कि "सदाचार उनका परम धर्म है।"

—गंगाप्रसाद M. A, सभापति
आर्यकुमार सम्मेलन-मिर्ज़ापुर,

स्वाध्याय (१)

हमारा जीवन शरीर और मन की क्रियाओं का मिश्रण है। हमारा काम न तो केवल शरीर से ही चल सकता है और न केवल मन से ही। इसलिए दोनों को उचित अवस्था में रखना हमारा कर्त्तव्य है।

हममें से अधिकांश शरीर का विचार तो रखते हैं, परन्तु मन को भूल जाते हैं। शरीर की हम कई प्रकार से चिन्ता रखते हैं, उसकी रक्षा करते हैं, उसकी वृद्धि के लिए पौष्टिक भोजन खाते हैं और उसे स्वस्थ रखने के लिए व्यायाम करते हैं; परन्तु कितनों को यह विचार आता है कि हमारे मन को भी इन्हीं के समान पदार्थों की आवश्यकता होती है ?

हमारे मन का विकास यों ही नहीं होजाता। बचपन में मन की क्रियाएँ बहुत सीमित रहती हैं और धीरे-धीरे

उनका विकास होता है। इस विकास में कई बातें सहायक होती हैं। बच्चे के माता-पिता उसे अनेक बातें सिखाते हैं। शाला में और आगे चलकर विश्वविद्यालय में शिक्षकों द्वारा उसे अनेक बातें सीखने को मिलती हैं। इन सब का उनके मन के विकास पर प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार की शिक्षा के अतिरिक्त उसका वातावरण, उसके साथी, उसका कार्य आदि ये सब भी उसके मन पर प्रभाव डालते हैं। ये सब बाहरी प्रभाव हैं, लेकिन इनके अतिरिक्त बच्चा स्वयं भी देख-सुनकर और सोच-विचारकर अपने मन को विकसित करता है। वास्तव में आन्तरिक और बाह्य—दोनों प्रकार का प्रभाव मिलकर मनको विकास की ओर ले जाता है। जिस प्रकार शरीर भाँति-भाँति के खाद्य-पदार्थों के मिश्रण से बनता है, उसी प्रकार मन भी भाँति-भाँति के विचारों के मिश्रण से बनता है।

परन्तु जिस प्रकार शरीर के लिए व्यायाम की आवश्यकता है, उसी प्रकार मन को भी व्यायाम की आवश्यकता है, और मन का वह व्यायाम 'स्वाध्याय' है। स्वाध्याय ही मन को विकास के सच्चे मार्ग पर ले जाता है। आर्यकुमार वैदिक-धर्म के मिशनरी हैं। इसलिए उन्हें स्वस्थ और पूर्णतया विकसित मन की अधिक आवश्यकता है। उनका यह कर्त्तव्य है कि नित्य

नियम से स्वाध्याय करें। स्वाध्याय से उनका मन उस कार्य के योग्य बन सकता है, जिसे महर्षि उनके सामने छोड़ गये हैं। उनकी ज़िम्मेदारी अन्य युवकों से अधिक है, इसलिए उन्हें नित्य थोड़ी देर स्वाध्याय करके अपने मन को उस ज़िम्मेदारी के योग्य बनाना चाहिये।

स्वाध्याय का अर्थ यह नहीं है कि जो पुस्तक सामने आये, उसी को पढ़ना। एक आर्य्यकुमार को अपनी पुस्तकें चुनने में भी सतर्क रहना चाहिये। धार्मिक, ऐतिहासिक, सामाजिक व नैतिक पुस्तकों के लिए स्वाध्याय में अधिक स्थान मिलना चाहिये। राजनीति के विषय में मतभेद हो सकता है, परन्तु मेरे विचार में आजकल राजनीति के अध्ययन की भी अधिक आवश्यकता है।

स्वाध्याय (२)

स्वाध्याय मनुष्य-जीवन का लैविल ऊँचा करने का अचूक साधन है। इससे कूपमण्डूकता निकलकर हृदयोंमें उदारता का समावेश हुआ करता है। स्वाध्याय दो प्रकार का होता है—(१) पुस्तकों का अध्ययन; (२) आत्माध्ययन (Self Introspection)। पुस्तकों के अध्ययन से ज्ञान-वृद्धि होकर बुद्धि की शुद्धि होती है और बुद्धि की

शुद्धि से मनुष्य सभी प्रकार के अन्धविश्वासों, अनाचारों और अनर्गलताओं से मुक्त हो जाया करता है। यह अनुभव में आयी हुई बात है कि यदि मनुष्य नियम से प्रतिदिन एक घण्टा स्वाध्याय में व्यतीत करे, तो उत्तम रीति से किसी अच्छे ग्रन्थ के २० पृष्ठ पढ़ लिया करता है, अर्थात् एक वर्ष में साढ़े सात हज़ार पृष्ठ के पढ़ लेने में उसे कुछ भी कठिनता न होगी। इस प्रकार से अनेक वर्षों में अनेक ग्रन्थों की जानकारी वह प्राप्त कर लेगा। अमेरिका के वारमाउण्ट नामक नगर के एक विद्यार्थी को अपने रुचिकर विषय गणित के अध्ययन को छोड़कर जीवन-निर्वाह करने के लिए मोची का पेशा करना पड़ा, परन्तु उस पेशे को करते हुए उसने एक घण्टे का समय प्रतिदिन गणित के लिए अर्पण किया। ३ वर्ष में वह उस विषय का विशेषज्ञ होगया, और तमाम यूनिवर्सिटियों में वह प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखा जाने लगा। यह स्वाध्याय का फल था।

आत्म-निरीक्षण स्वाध्याय का दूसरा अङ्ग है। इसके द्वारा मनुष्य अपने गुण-दोष जाना करता है। जबतक मनुष्य अपने दोषों को नहीं जानता वे उससे छूट भी नहीं सकते। इसलिए उनका जानना अनिवार्य्य है, तभी उन दोषों से कोई छूटा करता है।

ये दोनों स्वाध्याय के अङ्ग आवश्यक हैं और एक

को छोड़ने से दूसरे में अधूरापन रह जाता है। समानान्तर-रेखा के तौर पर दोनों को साथ-साथ चलना चाहिये।

इसलिए स्वाध्याय का आश्रय लिये बिना कोई मनुष्य मनुष्योचित गुणवाला नहीं बन सकता !!

प्रतिज्ञा

तन क्षीण दीखता था, बलहीन दीखता था !
मैंने उसे विलोका वह दीन दीखता था !
गर्दन पड़ी हुई थी, आँखें गढ़ी हुई थीं !
शिर-बीच दासता की मुहरें जड़ी हुई थी !
कुछ रङ्ग-ढङ्ग तोला, मुँह एक बार खोला !
डोला न किन्तु बोला—'पीछे नहीं हटूँगा !!'
दोनों भुजा उठाली, झट काम में लगादी !
जो शक्ति सो रही थी, उसको जरा जगादी,
पथ कण्टकों भरा था, पर पैर को जमाया,
कठिनाइयाँ विलोकीं, चुपचाप पास आया,
बोला—"हटो,, न रोको, मैं तो चढ़ूँ बढ़ूँगा
क्यों शक्तिखोरही हो ? पीछे नहीं हटूँगा !!'

* *

सदाचार-निर्माण

कर्मण्यता जीवन है, तो अकर्मण्यता मृत्यु है। जिन व्यक्तियों ने अपने शारीरिक तथा मानसिक अङ्गों को प्रयोग में लाना सीखा है; जो नित्य-प्रति व्यायाम करते हैं और मनन-द्वारा अपने ज्ञान तथा विज्ञान की बृद्धि करते हैं, उन्हें बल की प्राप्ति होती है। शारीरिक हो अथवा मानसिक बल अधिक बल का साधन बनता है। इसी कारण स्वास्थ्य से शक्ति उत्पन्न होती और आत्मिक-शक्तियों की वृद्धि होने लगती है। जो व्यक्ति रोगगृहीत है, वह शारीरिक दृष्टि से तो मृत्यु के तट पर खड़ा है; क्योंकि वैज्ञानिक-दृष्टि से शरीर की रचना १८ प्रकार के अणुओं (Cells) से बनती है और रोगी के शरीर में लाखों नहीं—करोड़ों अणु ऐसे होते हैं, जो मरे हुए व निकम्मे हो शरीर में ठहरे हुए हैं और हमारी मशीन के पुरज़ों में धूल के

समान अटक रहे हैं। विपरीत इसके जिस शरीर में जीवन अणुओं की मात्रा अधिक है, वह शरीर तन्दुरुस्त है, फुरतीला है और उसके सभी कार्य्यों में जागृति और बल दिखाई देता है।

जीवन का आधार रक्त है और रक्तरस द्वारा बनता है। जिसके शरीर में शुद्ध रक्त है, उसका दिमाग़ सुथरा और आत्मा मनस्वी बन जाता है। कारण यह कि उसके रक्त में जीवन-शक्ति की प्रधानता है। शारीरिक बल-द्वारा ही आत्मिक बल मिलता है और शक्ति का सञ्चार (Nervous Energy) नसों की शक्ति में परिवर्तित हो जाता है। यदि आप में बल है, तो आप सफलता देवी को अपनी दासी बना सकते हैं और पुरुषोत्तम पुरुष की उच्च पदवी के अधिकारी बन सकते हैं !!

सच्चा उत्साह

नवयुवको ! आपने प्रायः देखा होगा कि सदुपदेश के होने पर भी हमारा जीवन आर्य्य-जीवन नहीं बनता। हम जानते हुए भी कि शारीरिक, सामाजिक तथा मानसिक-उन्नति करना हमारा कर्त्तव्य है, इस ओर ध्यान नहीं देते। महापुरुषों के जीवन-चरित्रों को पढ़ते हुए भी हम उनके पद-चिह्नों पर चलने में कटिबद्ध नहीं होते। नवयुवक होते हुए भी हम अपने अन्दर जोश को नहीं पाते, आख़िर

इसका कुछ तो कारण होगा। हमारे विचार में इसकी तह में एक त्रुटि है और वह यह है कि हमारे नवयुवकों के हृदय-मन्दिर में उत्साह उत्पन्न नहीं हुआ। शरीर पर मांस को बाँध देने से जैसे बल नहीं आता, वरन् आहार्य्य द्रव्यों के पचाने (Assimilate) से ही बल की उत्पत्ति होती है, ठीक वैसे ही सच्चा उत्साह तो तभी पैदा होगा, जब किसी के हृदय-मन्दिर में प्रकाश होने लग जाय। संसार सर्वदा ही उस सज्जन को आगे बढ़ने का मार्ग दे देता है, जो यह अनुभव करता है कि मैं कठिन-से-कठिन कार्य्य को कर सकता हूँ। तभी तो कहा है कि जो कठिन कार्य्य किसी ने पहले कभी सम्पादन किया है, हम भी उसे कर सकते हैं। यदि २५०० वर्ष हुए यूनान के वीरों ने अपने शरीरों को बलिष्ठ, सुडौल और सुन्दर बनाया था, तो आज भी (Appolo) के सदृश मनुष्य विद्यमान हैं। प्रत्येक मनुष्य अपना मूल्य स्वयं डालता है। जो दाम हम माँगते हैं, वही दाम हमें मिलते हैं बशर्ते कि हम उन गुणों को वस्तुतः धारण कर रहे हों। सच तो यह है कि मनुष्य का महत्व अथवा क्षुद्रता उसकी अपनी ही मननशक्ति का फल है। बाह्य साधनों-द्वारा उतना प्रभाव नहीं पड़ता, जितना कि अन्दरूनी उत्साह-रूपी अग्नि के प्रज्वलित होने से पैदा होता है

तेज की उत्पत्ति

बाल्यावस्था में ही तेज उत्पन्न होता है—इसी आयु में भावी जीवन के लिए संकल्प उठते हैं। इसी आयु में मनुष्य अनेक धारणाएँ करता, भिन्न-भिन्न प्रकार के प्रोग्राम बनाता और अपने लिए सृष्टि रचता है। कैसे दुःख की बात है कि माता-पिता, सम्बन्धी, मित्र और कभी-कभी अध्यापक भी नौजवानों की इस कल्पित सृष्टि पर शीतल पानी डाल देते हैं और उसे मेटकर बालकों के कोमल हृदय पर आघात पहुँचाते हैं। यदि मुझे ऐसे कुमारों से मिलने का सावकाश मिले तो मैं उन्हें कहूँ—दृढ़ रहो, कभी न डगमगाओ। हाँ, अपनी सृष्टि को बुद्धि अनुसार नित्य-प्रति सुन्दर बनाने की चेष्टा करो और उसे पूर्ण करने के निमित्त अपना तेज भी बढ़ाते जाओ। यह मिथ्या है कि आप २० फीट लम्बी छलाँग नहीं लगा सकते। सम्भव है कि पूर्ण अभ्यास के न होने के कारण अभी आप केवल ८ फीट लम्बी छलाँग लगा सकते हैं। किन्तु जब आपने दृढ सङ्कल्प कर लिया कि आप २० फीट लम्बी छलाँग लगावेंगे और उसके लिए तेज धारण कर अभ्यास करना प्रारम्भ कर दिया तो परमात्मा आपको शक्ति प्रदान करेंगे और वह दिन आयेगा, जब आप सफलमनोरथ हो २० फीट लम्बी छलाँग लगा सकेंगे। यही अवस्था
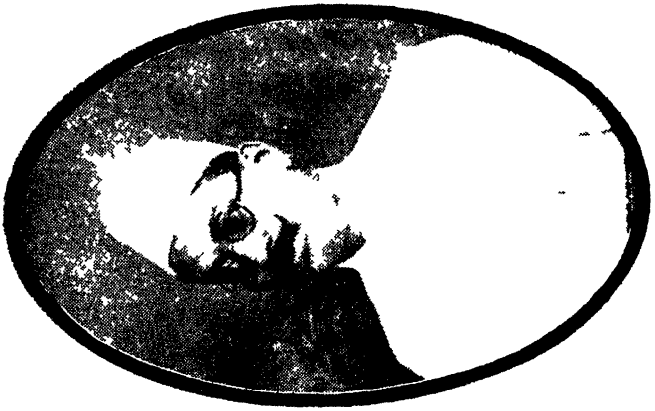
हमारे सामाजिक और आत्मिक साधनों की है। जब हमने दृढ़तापूर्वक निर्धारित कर लिया कि हमें अमुक कार्य करना अथवा अमुक कठिनाई को हल करना है, तब हम उसे निस्सन्देह कर लेंगे, यदि हम उनका मूल्य देने को तैयार हों। मूल्य धन द्वारा ही नहीं होता—वैराग्य द्वारा, अभ्यास द्वारा, कठिन परिश्रम द्वारा, अहर्निश की तपस्या द्वारा, कोई भी साधन हो, है वह मूल्य ही। यदि आप संजीदगी से किसी उद्देश्य को पाना चाहते हैं तो इसी घड़ी को पकड़ लो। जो कुछ आप जानते अथवा विचार करते हैं कि होना चाहिये, उसे दृढ़ता से आरम्भ कर दीजिये। पुनः-पुनः के संघर्षण से आपके मन में अग्नि प्रज्वलित होगी, सन्देह तथा विरोध की वायु उस अग्नि को बुझाने की चेष्टा करेगी; परन्तु आपका सङ्कल्प दृढ़ होगा तो वह अग्नि अधिक-से-अधिक प्रदीप्त होगी और आपको सफलता प्रदान करायेगी।

कुमारो! क्या कभी आपने गंगा-सदृश किसी बड़ी नदी को देखा है? कितनी बड़ी जल की राशि उसकी छाती पर से उछलती हुई बह रही है। लाखों करोड़ों एकड़ों के खेत इस जल द्वारा हरे-भरे हो रहे हैं। करोड़ों रुपयों की उपज के साधन इस जल में विद्यमान हैं, परन्तु यह जल आया कहाँ से? इस जल की उत्पत्ति उन

छिपे हुए चश्मों से हुई है जो पर्वत के अन्दर से निकल कर इस धारा में आकर सम्मिलित होजाते हैं यही अवस्था मनुष्यों तथा जातियों की है। सच्चरित व्यक्तियों के हृदयों में उत्तमोत्तम सङ्कल्प उठते हैं। उन्हीं उच्च विचारों का परिणाम संसार की उन्नति है। उन्हीं सङ्कल्पों के द्वारा नवयुवकों के जीवन महात्माओं के जीवन बन जाते हैं। कारण यह कि हम सामग्री को पाकर अपने जीवन-रूपी भवन के स्वयं निर्माता बनते हैं। हममें शक्ति है कि चाहें तो अपने कर्मों द्वारा कीर्तिस्तम्भ की नींव डालदें अथवा कीट-पतङ्ग के सदृश अपने अमूल्य जीवन को मलियामेंट करदें।

यह सत्य है कि विश्वास पर्वतों को हटा सकता है; परन्तु वह विश्वास स्वात्म-विश्वास होना चाहिये। स्वावलम्ब ही में बड़ी प्रबल शक्ति है। जिसने एक बार एकान्त में अपने प्रियात्मा की मधुर वाणी को सुन लिया और अपनी समग्र शक्तियों का निशाना एकाग्र रूप से उस उद्देश्य की प्राप्ति में लगा दिया, संसार की कोई शक्ति उस के मार्ग में बाधा नहीं डाल सकती। हाँ, असफलता होती है तो तभी, जब हम असत्य को सत्य और अज्ञान को ज्ञान समझ लें।

सङ्कल्पों का कोष जोड़ो !

आर्य्यमित्रो ! कहते हैं कि जब कारीगर 'मिलॉन' के कैथिड्रल को निर्माण कर चुके तो उनसे पूछा गया कि उन्होंने प्रत्येक अङ्ग में उस गगनारोही भवन को सुन्दर कैसे बना दिया है। इसपर उन्होंने उत्तर दिया कि प्रत्येक विभाग को क्योंकि हमने भगवान् के नामपर बनाया है, इसलिये उसे पूर्ण तथा सुन्दर बनाने का यत्न किया है।

आज हम सदाचार-निर्माण के उत्तम विषय को आपके सामने उपस्थित करते हैं। आप अमृतपुत्र हैं। परमात्मा ने आपके लिए यह दिव्यधाम निर्माण किया है, दूसरे निर्माता आप हैं। व्यायाम-द्वारा, आहार, निद्रा और सङ्कल्पों द्वारा आप इस दिव्यधाम को नीरोग, सुडौल, सुन्दर और दर्शनीय शरीर बना सकते हैं। आत्मिकोन्नति के साधनों द्वारा आप इसमें अपूर्व कान्ति और तेज का सञ्चार कर सकते हैं। आओ, उठो ! जागो !! अपनी उन्नति के लिए दृढ़ सङ्कल्प को धारण करो ! अपने प्रातः और सांयकाल के क्षणों को क़ीमती बनाओ ! सत्पुरुषों के सत्सङ्ग से अपनी आकांक्षाओं को निर्मल बनाओ ! साधनों-द्वारा नित्यप्रति उन्नति करने के उपाय निकालो ! आज जो फुरसत के लहमे आपको मिलते हैं यह आप की सुनहरी रेत है। यदि रेत को चुनना सीख लोगे तो

बहुमूल्य सङ्कल्पों तथा साधनों का सोना आपके हृदय-मन्दिर में इकट्ठा हो जायगा। इन्हीं क़ीमती क्षणों में एक-एक करके अमूल्य सङ्कल्परूपी रत्नों का ख़ज़ाना आपके नाम जमा हो जायगा। यही उत्तम विचार सदाचार बनकर आपके आत्मा को प्रोत्साहित करेंगे, और उसे देदीप्यमान विकास की शाही सड़क पर ले चलेंगे। जगत् में आपकी विख्याति होगी। आपके सदाचार जीवन से साधारण प्रजा को लाभ होगा और परमात्मा के आशीर्वाद से आपका जीवन सफल जीवन बन जायगा।

धैर्यवान् !

देखकर जो विघ्न-बाधाओं को घबराते नहीं।
आग पर रहकर जो पीछे हैं पछताते नहीं।
काम कितना ही कठिन हो पर जो उकताते नहीं।
भीड़ पड़ने पर भी चञ्चलता जो दिखलाते नहीं।
होते हैं यक आन में उनके बुरे दिन भी भले।
सब जगह सब काल में रहते हैं वह फूले-फले॥

* * *

संयम

सौन्दर्य, स्वास्थ्य, सुख, सङ्गति आदि कलाओं एवं सत्य का भी मूल 'संयम' ही है। यही नहीं, समस्त रचना, सृष्टि का आदि, और जो कुछ भी वाञ्छनीय है वह सब संयम-रूप ही है। मनुष्य की सभी आवश्यकताओं की पूर्त्ति संयम में है। उसकी समस्त समस्याओं का हल एक संयम में है, उसके ज्ञान का लक्ष्य संयम, उसके ध्यान का लक्ष्य संयम और उसके तथा इस विशाल विश्व के जीवन का लक्ष्य संयम है। जहाँ संयम है, वहाँ सुख है; जहाँ संयम है, वहाँ शान्ति है; जहाँ संयम है, वहाँ शोक और सन्ताप का सर्वथा अभाव है। संयम ही सत्य है, संयम ही शिव है और संयम ही सुन्दर है।

शरीर के अस्वस्थ होने पर संसार की कोई भी चीज़ अच्छी नहीं लगती। खाना, पीना, खेलना, कूदना, पढ़ना,

लिखना, नाच, तमाशा आदि कुछ भी अच्छा नहीं लगता जब कि हमारा शरीर अस्वस्थ होता है। इसलिए स्वस्थ नीरोग शरीर प्राणि-मात्र की पहली मूल आवश्यकता है। किन्तु "सुख का सार स्वास्थ्य है, तो स्वास्थ्य का सार संयम है।" वास्तव में जो शरीर और मन-दोनों से स्वस्थ है, उसे सुख के अन्य साधनों की अपेक्षा नहीं। वह तो अपने चोले ही में मगन रहता है।

हमारा शरीर विभिन्न अङ्गों का सुसङ्गठित समुदाय है—यह एक प्रकार का समाज है। वेद में समाज और शरीर की तुलना करते हुए इस ओर इशारा किया है कि दोनों के सुखी रहने के नियम एक ही हैं। शरीर और समाज के सुखी, सबल और सुन्दर रहने का मूलाधार संयम है। पूर्णतया स्वस्थ शरीर की पहचान यही है कि हम अपने शरीर से सर्वथा बेसुध रहें। हमें अपने शरीर के केवल उसी अङ्ग का ध्यान होता है, 'जिसमें कोई विकार होता है। पेट में ख़राबी होने से हर समय पेट की ओर ही वृत्ति रहती है। आँख में ख़राबी होने पर ही हमें भान होता है कि हमारे शरीर में आँख भी है। नहीं तो हमारे शरीर के सभी अङ्ग अपना काम ठीक-ठीक करते रहने पर हमें उनके अस्तित्व पर कभी ध्यान नहीं होता। वरन् यह भी कहा जा सकता है कि जबतक इन अङ्गों में विकार नहीं

होता, यह अपने अस्तित्व को प्रकट ही नहीं करते। हमारे शरीर के अङ्गों का मूल विकार यही है कि वे अपना व्यापार अपनी तुष्टि के लिए करें, न कि समस्त शरीर के हित की दृष्टि से। ज्योंही हमारा कोई अङ्ग इस स्वार्थ-दृष्टि से काम करने लगता है, शरीर का स्वास्थ्य बिगड़ने लगता है। सब से अधिक प्रभाव हमारी जीभ के विकृत होने पर पड़ता है। जब कभी जीभ अपने स्वाद (स्वार्थ) के लिए खाती है, वह समस्त शरीर के हिताहित की पर्वाह नहीं करती। हमारा शरीर रोगी होने लगता है। प्रश्नोपनिषद् में इस विषय को एक बहुत ही उत्तम कथा के रूप में रखा है। एक बार शरीर के विभिन्न अङ्गों में इस बात पर झगड़ा हुआ कि इस शरीर का आधार कौन है। निश्चय हुआ कि एक-एक अङ्ग उसको छोड़े। जिसके बिना यह शरीर टिक न सके वहीं उसका आधार समझा जाय। पहिले आँख छोड़कर चलीं गयीं, परन्तु अन्धा शरीर अपना काम चलाता रहा, बेचारी हार मानकर लौट आयीं।

इसी प्रकार एक-एक करके अन्य दसो इन्द्रियाँ गयीं और हार मानकर लौट आयीं। फिर अन्तर-इन्द्रियों—मन, बुद्धि, चित्त और अन्तःकरणने भी परीक्षा की और हार मानी अन्त में जब प्राण चलने को उद्यत हुए तो सारा शरीर, सब इन्द्रियों-सहित व्याकुल होकर प्राणों से प्रार्थना करने लगा

कि वह न जायँ। सबने स्वीकार किया कि 'आग्नेय प्राण' ही इस शरीर का आधार है। इस आख्यान का रहस्य बहुत उपदेशपूर्ण है। हमारी इन्द्रियाँ कभी-न-कभी स्वार्थ के वश हो ऐसा काम कर डालती हैं, जिससे सारे शरीर को दुःख भोगना पड़ता है। उनमें स्वार्थ और स्वाद आजाता है, परन्तु प्राण कभी केवल अपने स्वाद के लिए काम नहीं करते। इन्द्रियाँ कभी-न-कभी विश्राम करती हैं, परन्तु प्राण जन्म से लेकर मरण-पर्यन्त निरन्तर अपना काम करते रहते हैं। नितान्त निस्वार्थ भौर निरन्तर सेवा ही प्राणों का काम है। जब शरीर सोता है—सभी अङ्ग निष्क्रिय हो विश्राम करते हैं, प्राण रूपी पहरेदार उसकी रक्षा करते हुए नित्य जागृत रहते हैं। सर्व-हित को ही निज हित समझ उसके साधन में निरन्तर तत्पर रहना ही संयम का मूल स्वरूप है। इसलिए संयमी प्राण ही हमारे शरीर का आधार हैं।

जब स्वास्थ्य ही सब सुखों का सार है और इन्द्रियों का संयम ही स्वास्थ्य का मूल है तो यह निष्कर्ष सहज ही में निकल आता है कि इन्द्रियों का संयम ही सब सुखों का मूल है। अन्य इन्द्रियों का संयम जीभ के संयम पर निर्भर है। इसलिए जीभ का संयम समस्त संयम की जड़ है, जीभ के दो कर्म हैं—भोजन और भाषण। इसलिए जीभ के

दो प्रकार के संयम से मनुष्य शारीरिक और सामाजिक, दोनों प्रकार के क्लेशों से बच सकता है! पथ्यरूप भोजन, और पथ्यरूप भाषण जीभ के संयम हैं। स्वास्थ्य के लिए खाओ न कि स्वाद के लिए। स्वाद को स्वास्थ्य के लिए समझो न कि इसके विपरीत। स्वाद में निज-हित का प्राधान्य है, और स्वास्थ्य में सर्व हित का। इसी प्रकार बोलते समय भी यह ध्यान रहे कि हमारा भाषण समाज के लिए हितकर हो, न कि हमारे कानों को ही प्रिय लगनेवाला !!

क्या-क्या करेंगे हम ?

युवकों का यह युग है,
हम आर्य युवक डट जावेंगे।
भारत के कौने कौने में,
सद्धर्म-ध्वजा फहरावेंगे ॥
हम द्वेष-ग्रन्थियाँ खोलेंगे,
हम प्रेम-वल्लरी बो देंगे।
जीवन तक माँ पे दे देंगे,
निज देश का मान बढ़ावेंगे ॥
हम दुखड़े जग के खो देंगे,
हम दीनों के हित रो देंगे।
तब हृदय-कालिमा धो देंगे,
सद् आर्यकुमार कहावेंगे ॥

—'वीर'

उन्नति के साधन

उन्नति क्या है, यह एक बड़ा गम्भीर और आवश्यक प्रश्न है। गम्भीर इसलिए कि मनुष्य-जीवन से इसका विशेष सम्बन्ध है, अर्थात् संसार में जितने प्राणी हैं, उनमें केवल मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है, जो स्वतन्त्रता से ज्ञानपूर्वक प्रयत्न करता हुआ उन्नति कर सकता है।

आवश्यक इसलिए है कि जब तक उन्नति का वास्तविक रूप ज्ञात न हो, तब तक मनुष्य उसके लिए न तो ज्ञानपूर्वक प्रयत्न कर सकता है और न ही उन्नति के यथार्थ साधन जाने जा सकते हैं और जब तक ज्ञानपूर्वक यथार्थ साधनों द्वारा यत्न न किया जाय, तब तक मनुष्य-जन्म-सम्बन्धी अभीष्ट उन्नति नहीं हो सकती।

उन्नति का साधारण अर्थ तो है वृद्धि अथवा बढ़ौती, जिसका अभिप्राय है पूर्व की अपेक्षा अच्छी स्थिति को प्राप्त करना, परन्तु प्रकरणसम इसके अर्थ हैं ज्ञान तथा शक्ति (शारीरिक, सामाजिक, आध्यात्मिक) के सम्पादन द्वारा मनुष्य-जीवन के उद्देश्य "अभ्युदयपूर्वक मोक्ष" की ओर क्रमशः बढ़ना।

हमें क्या करना चाहिये ?

प्रिय आर्य्यकुमारो और नवयुवको ! यदि आप उन्नति करना अथवा मनुष्य-जीवन को सफल बनाना चाहते हैं, तो—

१—मनुष्य-जीवन के उद्देश्य "अभ्युदयपूर्वक मोक्ष" प्राप्ति को ही अपने जीवन का लक्ष्य बनाओ; क्योंकि मानवीय पूर्ण उन्नति का यही रूप है।

२—कर्म-परायण बनो, क्योंकि वास्तव में यही सफलता का रहस्य है—

आराम है इसमें कि आराम न हो।
वह भी कुछ जीना है कि कोई काम न हो॥

ज्ञानपूर्वक गति अर्थात् कर्म करने का नाम ही जीवन है। जिसमें यह गति नहीं, वह जीवन-रहित (मृत) अर्थात् जड़ है।

३—ब्रह्मचर्य्य तथा स्वाध्याय व्रत का पालन करते हुए ज्ञान और शक्ति (शारीरिक, सामाजिक, आध्यात्मिक) का सञ्चय करो। यदि आपको नियमपूर्वक गुरु द्वारा विद्या-अध्ययन करने का सुअवसर प्राप्त नहीं हुआ तो अब उसकी चिन्ता मत करो, क्योंकि निश्चय जानिये कि आप ऐसी अवस्था में भी ब्रह्मचर्य्यपूर्वक स्वाध्याय करने से विद्वान् बन सकते हैं—यह मेरा निजी अनुभव है।

४—शारीरिक उन्नति के लिए नियमपूर्वक ब्रह्मचर्य्य का पालन और व्यायाम करो। रहन-सहन, खान-पान, पहिरन आदि बिलकुल सादा रखो—इससे आप बलवान् व स्वस्थ होंगे।

५—सामाजिक उन्नति के लिए समाज-शास्त्रानुसार बनाये गये सामाजिक नियमों में बद्ध रहकर देश, काल और अवस्थाओं के अनुकूल उपयोगी साधनों द्वारा यत्न करो।

६—आध्यात्मिक उन्नति के लिए ईश्वर-चिन्तन तथा ईश्वरीय गुणों को अपने क्रियात्मक जीवन में धारण करो।

७—सदाचारी अथवा आचार-सम्पन्न तपस्वी, त्यागी और कर्मयोगी बनकर धर्मात्मा तथा महात्मा बनने का यत्न करो, क्योंकि मनुष्य-जीवन की सफलता का रहस्य इन्हीं में नियत है।

८—युवावस्था को पहुँचकर ही विवाह करो, परन्तु उस समय तक विवाह मत करो, जब तक कि अपनी गृहपत्नी आदि के जीवन निर्वाहार्थ आपके पास सामग्री न हो।

९—इस बात का पूरा ध्यान रखो कि विषय-भोग के प्रवाह में बहते हुए तुम्हारी सन्तान न हो जाय, अपितु भली प्रकार समझ-बूझकर संस्कारी सन्तान उत्पन्न करो

और उतनी ही सन्तान उत्पन्न करो कि जितनी का पालन-पोषण आप अच्छी प्रकार सुगमता से कर सकते हैं तथा शिक्षा द्वारा उन्हें मनुष्य बना सकते हैं, क्योंकि आपका यह अधिकार नहीं है कि मनुष्य-समाज में कमज़ोर, बीमार, बेकार, बटमार आदि की वृद्धि करो।

१०—सन्तान-उत्पत्ति के प्रवाह को रोकने के लिए बर्थ कण्ट्रोल जैसे कुत्सित साधनों का नहीं, अपितु सैल्फ कण्ट्रोल (ब्रह्मचर्य्य) का सेवन करो।

११—पुरुषार्थी, वीर और मितव्ययी बनो। ऐसा होने पर आप सांसारिक कष्टों और क्लेशों का मुक़ाबला कर सकेंगे और आपको जीवन-निर्वाह करने में बड़ी सुगमता होगी।

आर्य्य-शील का अधार सत्य

मन, वाणी और कर्म से सत् का आचरण करना ही मनुष्य के चरित्र को उच्च बना सकता है। सत् से बढ़-कर कोई पुण्य नहीं और झूठ से बढ़ कोई पाप नहीं। ब्रह्मचारी को वेदारम्भ-संस्कार के समय जो उपदेश दिया जाता था, उसमें सत् का प्रथम स्थान है। युवकों को चाहिये कि जहाँ तक उनसे बन सके, सत् मन सत् वचन और सत् करण का प्रण लेकर अपने शील को आर्य्य-शील बनावें।

न हि सत्यात्परोधर्मः नानृतात्पातकं परम्

इसमें किञ्चिन्मात्र भी सन्देह नहीं कि सत्य के समान कोई धर्म नहीं और झूठ से बढ़कर कोई पाप नहीं। सारे पुण्य-कार्य सत्य में समा जाते हैं और सब अधर्म, असत्य या अनृत शब्द से समझे जा सकते हैं। प्रश्न यह होता है कि वह सत्य है क्या चीज़, जिसका इतना महत्व है? इस शब्द का महत्व हमें इसके धात्वर्थ पर विचार से प्रकट हो जाता है। 'अस् भुवि' इस धातु से सत्य शब्द सिद्ध होता है, अर्थात् 'भू' धातु के अर्थ में ही 'अस्' धातु जानना चाहिये और 'भू' का अर्थ है 'सत्ता' इसलिए सत्य शब्द का अर्थ यह हुआ कि जो चीज़ जैसी है उसको वैसा ही मनसा, वाचा, कर्मणा स्वीकार करना सत्य कहता है। झूठ से मिला हुआ सत्य, सत्य

नहीं कहाता, वह धोखे की टट्टी है; पुण्य की ओट में छिपा हुआ पाप है। इसलिए ऋषि दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश की भूमिका में लिखते हैं कि वह सत्य नहीं कहाता जो सत्य के स्थान में असत्य, और असत्य के स्थान में सत्य का प्रकाश किया जाय, किन्तु जो पदार्थ जैसा है उसको वैसा ही कहना, लिखना और मानना सत्य कहाता है।

एक बार एक विद्वान् लेखक ने ऋषि दयानन्द पर लिखने के लिए "सत्य का दूत" यह अतीव उपयुक्त शीर्षक दिया था। सचमुच दयानन्द सत्य का सन्देश लेकर ही संसार में आये थे, उन्होंने दुनिया में जहाँ कहीं जो असत्य देखा वह जरूर कहा फिर चाहे सब संसार उनसे नाराज क्यों न हो जाय, लोग चाहें ईंटें बरसायें या जहर भी दे देवें। जगत् में सत्यार्थ का प्रकाश करना ही उनका एक मात्र उद्देश्य था। वह हमारे लिए जो खजाना छोड़ गये हैं, उसमें चमकता हुआ एक हीरा है। वह है, "सत्य के ग्रहण करने और असत्य के त्यागने में सर्वदा उद्यत रहना" इसी नियम के अनुसार उन्होंने स्वयं सत्यार्थ प्रकाश के आरम्भ में "सत्य वदिश्यामि" अर्थात् "मैं सत्य ही बोलूँगा" ऐसी प्रतिज्ञा करके अन्त में "सत्यमवादिषम्" अर्थात् मैंने इस ग्रन्थ में जो कुछ कहा है वह सत्य ही

कहा है। इससे पता चलता है कि दयानन्द वास्तव में सत्य का पुजारी था।

यह सारा संसार सत्य के अटल नियम से ही चल रहा है। सबने सत्य स्वरूप तक सत्य मार्ग से ही पहुँचना है। इसलिए उपनिषद् में कहा है कि 'सत्य मेव जयते नानृतम सत्येन पन्था विततो देवयानः। जब हम सत्य व्यवहार करते हैं, तब संसार की सारी शक्ति हमारे पास होती है और जब हम थोड़ा-सा भी असत्य व्यवहार करते हैं, तब हम महान् दुःख पाते है। जो है वह सत्य है और जो नहीं है वह असत्य है, तो फिर सत्य के विपरीत आचरण करना व्यर्थ में अपना सिर पत्थर से टकराना है। यदि हम इस गहराई तक पहुँच जायँ तो हम कभी भी असत्य बोलना न चाहें, कभी भी असत्य न सोचें और कभी भी असत्य न करें।

यह ठीक है कि सत्य का जानना भी एक कठिन कार्य है; परन्तु यह बात भी तभी तक है जब तक सत्य से प्रेम नहीं होता। जिसे सत्य की लगन है यही जिसके लिये दुनिया में एक मात्र चीज़ है, उसके पास तो सत्य एक प्रेमी की तरह भागा आता है। इसके प्रेम में जो एक बार पागल होगया बस फिर दुनिया में कोई शक्ति भी उसका कुछ नहीं कर सकती। हरिश्चन्द्र ने जिसे सत्य समझा

उसके लिए लाखों कष्ट सहे। वास्तव में जिसका जीवन सत्यमय है वह तो स्फटिक मणि जैसा है। असत्य तो इसके पास भी एक क्षण नहीं टिक सकता। न उसे कोई ठग सकता है, क्योंकि उसके सामने दूसरे लोग धोखा नहीं दे सकते। योग में सत्य की बड़ी महिमा गायी गयी है। वहाँ बतलाया गया है कि जब मनुष्य सत्य में प्रतिष्ठित हो जाता है तो वह जो भी कहे वह पूरा होजाता है। उसकी वाणी अमोघ होजाती है। इस सत्य के अवलम्बन से ही परम पदवी की प्राप्ति होती है। वास्तव में इस सत्य की महिमा अपार है। इसलिये हमें प्रभु से प्रार्थना करनी चाहिये कि हे

"ओं अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तत्ते प्रब्रवीमि तच्छकेयम्। तेनर्ध्यासमिदमहमनृतात्सत्यमुपैमि ॥

हे ज्ञानस्वरूप! हे सब व्रतों के स्वामी मैं यह व्रत धारण करूँगा। यह आपके सम्मुख प्रतिज्ञा करता हूँ कि इस व्रत को कर सकूं मेरा यह व्रत कराओ। वह व्रत यह है कि मैं अनृत को छोड़ता हूँ और सत्य को प्राप्त होता हूँ।

अहिंसा

(१)

अहिंसा का अर्थ है, अपने स्वार्थ के लिए दूसरों को न सताना। जो मनुष्य दूसरों को सताने की कभी इच्छा नहीं रखता, उसे दूसरा कभी नहीं सता सकता। हमारे मन में किसी को दुःख न पहुँचाने का भाव रहते हुए भी कई बार दूसरों को दुःख पहुंच जाता है। इसका कारण बहुतांश में दूसरों का स्वार्थ होता है। हमारे अहिंसक-कार्य से उनके स्वार्थ को धक्का पहुँचता है, जिससे वे दुःखी होते हैं और हमारा विरोध करते हैं। यदि हम सचमुच अहिंसक हैं, तो हम इस विरोध को शान्ति के साथ सहन करेंगे, उलटकर उसे सताने का प्रयत्न न करेंगे; परन्तु साथ-ही अपने कार्य को भी न छोड़ेंगे।

सच्चा अहिंसक वही है, जो अपने जैसा ही दूसरे को चाहता हो, अपने सुख-दुःख हानि-लाभ का जैसा विचार करता है, वैसा ही दूसरे का रखता हो। यह आत्म-विकास है। जिसकी आत्मा अधिक विकसित होगी, उसकी

अहिंसा स्वभावत: उतनी ही व्यापक होगी। यदि आपका जी मनुष्य के दुख से दुखी होता है और पशु के दु:ख से नहीं तो समझ लीजिये कि आपकी अहिंसा मनुष्य तक ही व्यापक हो पायी है, आपका आत्म-विकास मनुष्य से आगे नहीं बढ़ा है।

कहीं-कहीं यह भी देखने में आता है कि हम पशु पर तो दया करते हैं, उसके दु:ख-से-दुखी हो जाते हैं, लेकिन मनुष्यों की पीड़ा, यातना हमें द्रवित नहीं करती। ऐसी अवस्था में हमारी अहिंसा-वृत्ति के विकास में कहीं खामी और गड़बड़ जरूर है। ऐसे प्रसङ्गों पर हमें आत्म-परीक्षण की जरूरत है।

अहिंसा के पालन का सबसे व्यावहारिक नुस्खा यह है कि 'हम न किसी से दबें न किसी को दबायें।' यदि हम दबते तो नहीं हैं, पर दूसरे को दबाते जरूर है, तो हम अत्याचारी हुए। यदि हम दबाते नहीं हैं, लेकिन दबजाते हैं, तो हम डरपोक हुए। 'अत्याचारी' और 'डरपोक' दोनों मनुष्य कोटि में नहीं आ सकते। सच्चे मनुष्य में तेज और शान्ति होती है, जिससे न उसे कोई दबा पाता है और न वह किसी को दबाता है। यदि हमें सच्चा मनुष्य बनना है, तो इसके लिए हमें 'अहिंसा' की शरण जाना होगा।

(२)

"जब कोई मनुष्य कहता है कि मैं अहिंसा-परायण हूँ, तब उससे यह आशा की जाती है कि जब उसे कोई हानि पहुँचायेगा, तब वह उसपर क्रोध न करेगा, वह उसका नुक़सान न चाहेगा; बल्कि उसकी भलाई ही चाहेगा। वह न तो उसे गाली-गलौज करेगा और न उसके बदन को किसी तरह की चोट ही पहुँचायेगा। वह तो अन्याय-कर्त्ता के द्वारा किये गये हर तरह के नुक़सान को सहन ही करेगा। इस तरह अहिंसा मानों पूर्ण निर्दोषता ही है और पूर्ण अहिंसा का अर्थ है प्राणिमात्र के प्रति दुर्भाग्य का पूर्ण अभाव। सो वह तो मनुष्य से नीची श्रेणी के जीवों, यहाँ तक कि विषैले सर्पों और हिंस्र पशुओं को भी गले लगाता है। उनकी सृष्टि इसलिए नहीं हुई है कि उनके द्वारा हमारी विनाशक प्रवृत्तियों का पोषण हुआ करे। यदि हम सिर्फ़ उस जगत्कर्त्ता के हेतु को ही जान लें, तो हमें इस बात का पता लग जाना चाहिये कि उसकी सृष्टि में उन जीवों का कौन-सा उचित स्थान है। अतएव अहिंसा का क्रियात्मक रूप क्या है? प्राणिमात्र के प्रति सद्भाव। यही शुद्ध प्रेम है। क्या हिन्दू-शास्त्रों, क्या बाइबल और क्या कुरान सब जगह मुझे तो यही दिखाई देता है।

अहिंसा एक पूर्ण स्थिति है। सारी मनुष्य-जाति इसी

एक लक्ष्य की ओर स्वभावतः, परन्तु अनजान में, जा रही है। मनुष्य जब अपने तई निर्दोषता की साक्षात् मूर्त्ति बन जाता है, तब वह दैवी पुरुष नहीं हो जाता। वह तो उस अवस्था में सच्चा मनुष्य बनता है। आज की अवस्था में तो हम कुछ अंशों में मनुष्य और कुछ अंशों में पशु हैं। हम घूँसे के बदले में घूँसा जमाते हैं और हमारे क्रोध का पारा भी उतनी ही डिग्री चढ़ जाता है। और इसे हम कहते हैं कि हमने मनुष्य जाति के उद्देश्य की पूर्त्ति की है, अपने कर्त्तव्य का पालन किया है! यह तो अज्ञान, नहीं अहङ्कार भी है। हम कहते हैं, प्रतिहिंसा तो मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। हम तो इसके कायल हैं। परन्तु इसके विपरीति धर्मशास्त्रों में तो हम देखते हैं कि प्रतिहिंसा कहीं भी आवश्यक कर्त्तव्य नहीं माना गया है, बल्कि सिर्फ़ वह जायज़ बतायी गयी है। आवश्यक कर्त्तव्य तो है संयम प्रतिहिंसा के लिए तो बहुत से नियमों और शर्तों के पालन करने की जरूरत है। संयम तो हमारे जीवन का नियम ही है। क्योंकि बिना पूर्ण संयम के मनुष्य पूरी पूर्णावस्था को पहुँच ही नहीं सकता। इस प्रकार कष्ट-सहन मनुष्य-जाति का विशेष लक्षण है।

ध्येय तो हमेशा आगे-ही-आगे बढ़ता जाता है। ज्यों-ज्यों अधिक प्रगति होती जाती है, त्यों-त्यों मनुष्य अपने को

अधिकाधिक अयोग्य मानता जाता है। सन्तोष तो प्रयत्न में है, अभीष्ट-सिद्धि में नहीं। पूर्ण प्रयत्न ही पूर्ण विजय है।

अतएव यद्यपि मैं पहले से भी अधिक इस बात को जानता हूँ कि मैं अपने ध्येय से कितना दूर हूँ, तथापि मेरे लिए तो पूर्ण प्रेम का नियम ही अपने जीवन का नियम है। जब-जब मुझे असफलता प्राप्त होगी, तभी तब मैं और भी अधिक निश्चय के साथ प्रयत्न करूँगा।

यह उपयुक्त पंक्तिएँ सत्य और अहिंसा के अवतार महात्मा गाँधी जी की पवित्र लेखनी से निकली है। इस पुस्तक के सबसे पहले लेखमें भी बताया गया है कि सामाजिक सङ्गठनके लिए सत्य, ब्रह्मचर्य, अहिंसा आदि अत्यन्त आवश्यक हैं। भारतीय समाज की दीन-हीन अवस्था का मुख्य कारण गत ५००० वर्ष से सत्य और अहिसा का अभाव ही रहा है। सत्य और अहिंसा—इन दो शब्दोंसे ही हमें डर नहीं जाना चाहिये। हम ग़लती यही करते हैं कि सत्य और अहिंसा को कोई बहुत बड़ी धार्मिक चीज़ मानकर अपने रोज़ के जीवन में न लाकर किसी अन्य समय के लिए उठाकर रख देते हैं और एक दिन हमें यह मालूम होता है कि हमारा संसार से चलने का समय आ गया और वह अवसर न आया कि हम सत्य और अहिंसा

का उपयोग करते। आज हमें यह स्पष्ट जान लेना चाहिये कि सत्य और अहिंसा तो बहुत साधारण रोज़ जीवन में काम आनेवाली चीज़ें हैं। इसके बिना न तो हमारे घरेलू जीवन सुखी हो सकते और न सामाजिक। भाई-बहिन की लड़ाई, सास-बहू के झगड़े, हमारी कचहरियों में रोज़ मुक़द्दमेबाज़ी, हमारे घर का रोज़ का क्लेश, हमारी दैनिक आमदनी की कमी, जात-बिरादरी के झगड़े, मन्त्री और प्रधान पद के लिए सभा-सोसाइटियों की पार्टीबाज़ी, एक ही समाज और धर्म के सदस्यों के आपस में वैमनस्य, हमारी राजनैतिक गुलामी. हमारी धर्मान्धता—यह सब इन्हीं दो चीज़ों की अवहेलना करने का परिणाम है। आज भारतवासियों को और विशेषतया आर्यकुमारों और आर्य-पुरुषों को इस बात की अत्यन्त आवश्यकता है कि वे अपने जीवन में अहिंसा को पूर्ण रूप से घटावें। अहिंसा ही तो शुद्ध प्रेम है। हम अपने घरों में जो प्रेम की कमी देखते हैं, उसका कारण यही है कि हम अहिंसा को नहीं समझे। एक फ़ारसी कवि ने क्या अच्छा कहा है:—

"हरचे ख्वाही कुन दिल मयाजार।"

अहिंसा का इससे अच्छा अर्थ और क्या हो सकता है। वह कहता है, "जो तेरे मन में आवे सो कर, पर किसी का दिल न दुखा।" काश! हम सब

आज अपने मन में यह गाँठ बाँधलें कि हम हर काम जो करेंगे, हर बात जो बोलेंगे, उसमें इस बात का ध्यान रखेंगे कि किसी का दिल तो नहीं दुखता है, तो निश्चय हम अपने घरों के झगड़ों से बच जायेंगे। हिन्दू-समाज का गृह-कलह, जिसने हमें पतित कर दिया है, वह भाग खड़ा होगा। हमारी समाज और समाज में जो आपस के झगड़े हैं, वे दूर हो जायँगे और हम आपस में मिलकर बहुत-कुछ कर सकेंगे। एकता और सङ्गठन की कितनी महिमा गायी जाती है और कहा जाता है कि एक और सङ्गठित होकर हम सब-कुछ कर सकेंगे, मगर वह एकता और सङ्गठन हमारे अपने जीवन से, अपनी आत्मा से ही शुरू हो सकते हैं और उस सबका मूलमन्त्र है शुद्ध प्रेम और अहिंसा !

सारा ही भारतीय समाज आज पददलित और ग़ुलाम है। इसका मूल कारण यही है कि यह आपस में लड़ता है। सत्य और अहिंसा से दूर रहता है। इसलिए याद रखो कि हमारा मुख्य कर्त्तव्य आज यह है कि कुछ भी हो, पर हम आपस में लड़ें नहीं। एक दूसरे को नीचा दिखाने की कोशिश न करें। जहाँ हमारी ग़लती हो, उसे हम मानलें। जहाँ दूसरों की ग़लती है, वहाँ प्रेमपूर्वक उन्हें बतादें। उनसे घृणा न करें और यह याद रखें कि ग़लती

हम भी करते हैं। औरों की ग़लती को पहाड़-समान न देखकर अपनी ग़लती को पहाड़-समान देखें और दूसरों की ग़लती को तिल-समान। जो हमारे हैं, हमारे देशवासी हैं, हमारे धर्म-भाई हैं, उनकी ग़लती हमारी ही ग़लती है, उनका दुःख हमारा ही दुःख है, उनका पतन हमारा ही पतन है। इसलिए आज अपने समाज को सङ्गठित और शिरोमणि बनाने के लिए हमें यही करना होगा कि हम अपने भाइयों को पतित करने की और दुखी करने की समस्त चेष्टाओं को त्याग दें।

भारत में आज भिन्न-भिन्न धार्मिक और सामाजिक दल और समाजें हैं। भारत की उन्नति के लिए उन सबको आपस में प्रेम का व्यवहार करना होगा और याद रखिये जो समाज या दल आपस में प्रेम और अहिंसा के भावों को बरतेगा, वही सङ्गठित और शिरोमणि होगा और फिर वह समाज उन्हीं सिद्धान्तों को दूसरी समाजों के साथ बरतकर कुल भारत को ऊँचा उठा सकेगा। बस समझ लीजिए, अपने हृदयों को उदार बनाकर आज हम अपनी समाज और अपने देश को शिरोमणि बना सकते हैं, बशर्ते कि हम मन, वचन और वाणी से सत्य और अहिंसा का पालन करें।

ऐसी वाणी बोलिए, मन का आपा खोय।
औरों को शीतल करे, आपहु शीतल होय॥

भगवान् दयानन्द

वैदिक-सूर्य्य अस्त होचुका था। अन्धकार में अत्याचार बढ़ रहा था। धर्म की आड़ में अधर्म का साम्राज्य था, लोगों की आँखों में पक्षपात का नशा छाया था। विधवाएँ बिलख रहीं थीं। अनाथों की विकल-वेदना दिनोंदिन बढ़ रही थी। असंख्य हिन्दू मुसलमान तथा ईसाइयों की शरण लेते थे। हिन्दुस्तान तुर्किस्तान बन रहा था। हिन्दू घट-घटवासी प्रभु को कैलाश तथा रामेश्वर में ढूंढ़ रहे थे। हिन्दुओं के विश्वनाथ अपनी पत बचाने के लिए कुँए में कूद चुके थे। स्वर्ग की आकांक्षा के हेतु गौ तथा अश्व के वध को धर्म समझा जाता था। जीवित माता-पिता का तिरस्कार तथा मृतकों को भोग लगाया जाता था। ऐसी परिस्थिति में गुजरात-प्रान्त में एक विद्या का सूर्य्य उदय

हुआ था। वेदों के पुजारी, ईश्वर-भक्त बालब्रह्मचारी ऋषि दयानन्द का आगमन हुआ था।

उसने पतितों को गले लगाया, भूले को रास्ता दिखाया, वैदिक-मार्ग का दिग्दर्शन कराकर सच्चे शिव की पूजा सिखायी। धार्मिक विश्वास-रूपी तीव्रगति सरिता को जो अपने मर्यादा-रूपी कुल का उल्लंघनकर बह रही थी, उसे मार्ग में बहाकर शान्ति-सागर से मिलाया। उसने बिल-बिलाते हुए अनाथ बालकों तथा बिलखती हुई विधवा नारियों को शान्ति प्रदान की। वह अपने सिद्धान्त तथा सुविचार का एक मात्र सच्चा उपासक था। उसको अपने धर्म से डिगानेवाले स्वयं अपने धर्म से डिग जाते थे। ईश्वर पर उसका अखण्ड विश्वास था। तर्क ही उसका एक मात्र हथियार था, उसके हृदय में भारत का ही हित नहीं था, वरन् सारे विश्व का कल्याण था। वह निर्भीकता की मूर्ति था। वह मृतप्राय भारत के लिए वेद-वाणी-रूपी संजीवनी-बूटी बनकर आया था। पराधीनता के पाश से आबद्ध भारतियों में क्रान्ति की लहर जगाने आया था।

जो मनुष्य जीवन-रूपी यात्रा को प्रारम्भ कर चुका है, उसका अन्त अनिवार्य है। चाहे राजा हो अथवा रंक हो सभी को एक दिन उठ जाना है। जिस समय स्वामी जी के भगिनी तथा चचा की जीवन-यात्रा समाप्त होती है, उस समय

असाधारण प्रतिमा-सम्पन्न मूलशङ्कर के हृदय में ज्ञान का उदय होता है कि मृत्यु को जीतना चाहिये। जीवन को अमर बनाने के हेतु उन्होंने पर्वतों की कन्दराओं को ढूँढ़ा–नदियों के दुर्गम स्थानों का अनुसन्धान किया, परन्तु मृत्यु का पता नहीं पाया! महापुरुष भला अपने उद्देश्य को अधूरा कब छोड़ते? अन्त में मथुरा में दण्डी स्वामी विरजानन्द से मिलाप होता है। गुरु की असीम कृपा से दयानन्द सब विद्याओं में पारङ्गत होजाते हैं। अब गुरु-दक्षिणा का समय आता है। गुरु-दक्षिणा में गुरु लक्ष्मी की याचना नहीं करते, बल्कि संसार में फैले अन्धकार को दूर करने की अभिलाषा प्रकट करते हैं। आदर्श शिष्य दयानन्द गुरु के चरणों में सर को झुकाकर उनकी आज्ञा सहर्ष स्वीकार कर लेता है और जीवन भर प्रकाश फैलाते हुए अन्धकार से आक्रान्त भारत को प्रकाशित कर जाता है। संसार में ऐसे महापुरुष कितने हैं, जो आजीवन देश तथा जाति के प्रति अपने सम्पूर्ण जीवन को उत्सर्ग कर देते हैं? अथवा अब ऐसे कितने शिष्य हैं, जो अपने गुरु की आज्ञानुसार अपने जीवन को बलिदान कर देते हैं अथवा ऐसे कितने गुरु हैं, जिनकी मनोकामना संसार के अन्धकार का नाश करना ही हो?

जिस प्रकार सूर्य्य के अस्त होने पर दीपक प्रकाशित

किये जाते हैं, परन्तु फिर भी संसार का अन्धकार नहीं मिटता उसी प्रकार जब कि विद्या का सूर्य्य अस्त होजाता है, संसार-दीपक जलाता है; परन्तु फिर भी जग के तम का नाश नहीं होता। जिस प्रकार चन्द्रमा के अनुपस्थिति में असंख्य स्नेहहीन तारे-रूपी दीपक अन्धकार को नहीं मिटा सकते, उसी प्रकार सहस्रों की संख्या में सुधारक अज्ञानता-रूपी तम के नाश में लगे हुए हैं, परन्तु फिर भी दयानन्द के चन्द्रवत् प्रकाश को नहीं प्राप्त कर सकते।

आज जो कुछ भी जागृति संसार में दृष्टिगोचर हो रही है, उन सबका प्रारम्भ करनेवाला दयानन्द था। महात्मा गाँधी भी उसी पथ के गामी हैं। अछूतोद्धार की सबसे प्रथम पुकार स्वामी ने लगायी थी। स्वामी ने 'सत्यार्थ-प्रकाश' के अन्दर लिखकर चिताया था कि अपने देश का राजा चाहे कितना ही क्रूर हो, पर वह विदेशी राजा से उच्चतर है। क्या इससे स्वामी की देशभक्ति की महत्ता दृष्टिगोचर नहीं होती ? स्वामी ने अपने विष देनेवाले को अपने पास से रुपया देकर उसके प्राण बचाये थे। क्या संसारके इतिहास में ऐसे उदाहरण का मिलना सम्भव हो सकता है ? वह दीपावली का दिन था, जिस दिन भगवान् दयानन्दके प्राण-पखेरू इस अनित्य संसार को त्याग कर नित्य के अन्तर्गत हो गये !!

शिक्षा

शिक्षा का मुख्य और अन्तिम ध्येय है—आत्म-विकास अर्थात् हर प्रकार के बन्धनों से अपने मन को मुक्त करके स्वतन्त्र-रूप से अपनी और अपनी आत्मा की उन्नति और विकास करना।

ऋषि दयानन्द ने जो बड़ा भारी काम किया, वह यही था कि सदियों की उल्टी शिक्षा और मानसिक दासता को, जिसने देश के दिमाग़ों को ग़ुलाम बनाकर उन्नति से कोसों दूर फेंक दिया था, नष्ट-भ्रष्ट करके सच्ची स्वतन्त्र शिक्षा का बीज बोया और सामाजिक और धार्मिक ग़ुलामी से देश को मुक्त करके उन्नति-पथ पर खड़ा कर दिया।

मगर दुःख की बात है, पाश्चात्य शिक्षा-प्रणाली ने तो अपने ढङ्ग से हमारे दिमाग़ों को ग़ुलाम बना ही डाला था। आज आर्य्य-समाज जैसी स्वतन्त्र शिक्षा-प्रिय सोसायटी का वायु-मण्डल भी वैसा ही बन गया। हमारे शिक्षणालयों तथा घरों और सभाओं—सब में हमने फिर ऊँची-ऊँची

दीवारें खड़ी करके मनुष्य की बिलखती आत्मा को बन्दी कर दिया । हमारे उपदेशकों का एक ही ढङ्ग का आदेश जो रेल की लाइन की तरह ज़रा भी इधर-उधर नहीं हो सका । शास्त्रों के प्रमाण की तरह हम भी चन्द पुस्तकों व आचार्यों के प्रमाण ढूँढ़ते हैं । आज कोई व्यक्ति आर्य्य-समाज में स्वतन्त्र ढङ्ग से किसी चीज़ पर विचार नहीं प्रकट कर सका । वह काफ़िर हो जाता है । हम फिर 'कूपमण्डूक' की तरह कुँए को ही समुद्र मान बैठते हैं और वेदों का ज्ञान न होते हुए भी वेदों के सम्बन्ध में जो भावनाएँ हमारी बन जाती हैं, वही ठीक हैं । इस संकुचित वायु-मण्डल का हमारे कुमारों और नवयुवकों पर भी प्रभाव पड़ा और उससे दो प्रकार की प्रकृतिवाले युवक निकल रहे हैं—एक तो वही रूढ़िवादी, जो जैसी हवा में पले वैसे में वैसे ही अपने को और अपनी बुद्धि को पूर्ण विकसित और अपने ज्ञान को अन्तिम ज्ञान समझते हैं । पर अब ऐसे लोगों की संख्या बहुत कम है और कम होती जाती है ।

दूसरा वर्ग उन युवकों का है, जो इस दम घोटनेवाले वायुमण्डल से घृणा करने लगते हैं और फिर बे-लगाम होकर किसी भी ऐसे पथ के अनुगामी नहीं बन पाते, जिसमें वास्तविक उन्नति के सिद्धान्त एवं साधन सन्निविष्ट हों । यह वर्ग प्रायः नास्तिकता की ओर बह जाता है । इस-

का आचार-विचार बड़ा विषम और विशृङ्खल हो जाता है। अधिकतर नौजवान और शिक्षित समुदाय आज दिन इसी वर्ग में शामिल है, हमारे अधिकतर शिक्षालयों में आज यही दशा दीख पड़ती है, और इसका श्रेय हमीं को है।

किसी संस्था विशेष की ओर संकेत न करके यह निवेदन करना चाहता हूँ कि आज हमारी संस्थाओं के झगड़े—मन्त्रि और प्रधानपद के लिए सत्यासत्य का विचार किये बग़ैर दौड़-धूप, निर्वाचनों की धाँधलीबाज़ी, समाजों की पार्टीबाज़ी, हमारे उत्सवों की नीरस कार्यवाही, जिसको हमारे जीवन की महत्वपूर्ण पहेलियों से कोई सम्बन्ध नहीं ऐसे उपदेश और हमारे घर व बाहर का सारा वायुमण्डल हमारे इन नवयुवकों के बहक जाने और नास्तिकवाद की ओर जाने के ज़िम्मेदार हैं।

इन सब बातों की ओर संकेत करने का मेरा प्रयोजन यह है कि जिस सभा या सोसाइटी के क्षेत्र में इस प्रकार का वायुमण्डल है, उसके नवयुवकों की शिक्षा का क्या हाल होगा। दो-चार पुस्तक पढ़ लेना अथवा किसी स्कूल, कॉलेज मे डिग्री ले लेना केवल आंशिक शिक्षा है। शिक्षा का अत्यन्त आवश्यक अङ्ग है, वह संस्कृति, वह चरित्र, वह उदारता और मानसिक विशालता, वह संयम (Discipline), वह विवेक और प्रबुद्धता जिसकी सहायता

से हम मुख्य और गौण-धर्म में भेद करते हैं, जिसका अंकुर हमारे हृदयों में भगवान् ने दिया है, पर जिसे हमारे चारों ओर का विषैला वायुमण्डल नष्ट कर देता है। भगवान् की प्रस्फुट ज्योति का अंकुर हर बालक के हृदय में होता है। अनुकूल परिस्थिति पाने पर यह अंकुर पोषित होता और बढ़कर हमारा चरित्र बन जाता है। प्रतिकूल परिस्थिति में वह नष्ट हो जाता है अथवा दबा पड़ा रहता है, और अनेक क्रूरताएँ हमारे चरित्र में उसका स्थान ले लेती हैं।

ऊपर के विचारों को सामने रखते हुए यह आवश्यक प्रतीत होगा कि हमारी शिक्षा को वास्तविक और और शुद्ध बनाने के लिए हमारे चारों ओर का वायु-मण्डल पवित्र हो; पर जो ऐसा न हो तो नवयुवक क्या करें? इसका उत्तर मैं इस प्रकार दूँगा—अगर किसीको ऐसे देश में रहना पड़ जाय, जो मलेरियस हो, तो क्या वह अपने को स्वस्थ रखने की कोशिश नहीं करेगा? शुरू से ही कोशिश की जाय तो बालक को विषैले कीटाणुओं से अवश्य बचाया जा सकता है। इसी प्रकार आर्य-कुमारों को समझना चाहिये कि आज-कल उनको एक मलेरियस वायुमण्डल में रहना पड़ रहा है। तब क्या किया जाय? साफ़ है कि उनको (हम सबको) सचेत रहना चाहिये

और अपने को उस विषैले असर से सुरक्षित रखना चाहिये। इसी प्रकार हमारी किताबी विद्या हमारी उन्नति का साधन बन सकेगी, अन्यथा नहीं।

अब मैं यह संकेत करूँगा कि किन बातों में हमें प्रायः सचेत रहना चाहिये। कहना न होगा कि निर्वाचनों की वे गन्दगियाँ, जो अन्य सार्वजनिक संस्थाओं, जैसे म्यूनिसिपल-बोर्ड इत्यादि, में होती हैं हमारे आर्य-युवक और युवतियों को अपने पास कभी न आनी देनी चाहिये। आर्यकुमारी या कुमार जहाँ कहीं भी हों—स्कूल, कॉलेज, विद्यालय, सभा, समाज किसी संस्था में जहाँ भी हों, वहाँ उन नाम हो तो इस बात का कि वह विश्वासनीय हैं। उनके काम केवल सेवा-भाव से प्रेरित होते हैं—वे शुद्ध हृदय और सरल हैं।

दूसरे विचारों और धार्मिक विश्वासों में सकुचित हृदय नहीं है। वे यह नहीं समझने लगे हैं कि धर्म और परम ज्ञान अथवा सत्य का ठेका उन्हींके पास है। मौलिक सिद्धान्तों और गौण बातों में भेद समझना उदार नेता बनने के लिए अत्यन्तावश्यक है। इस प्रकार मानसिक प्रबुद्धिता बहस-मुबाहसे नहीं, परन्तु मनुष्य समाज के इतिहास, उसकी उन्नति के नियमों, एवं उसके अनेक अनुभवों की वास्तविकता तथा मूल पर बराबर

मनन करनेसे उत्पन्न हो सकती है। यह याद रखना चाहिये कि हमारा मानसिक तथा दैहिक अनुभव अथवा ज्ञान (Mental and Physical Experience) सब सापेक्षिक है (Relative), नित्य (Absolute) नहीं, इसी सिद्धांत को समझने से हमारे अन्दर असहिष्णुता और अहङ्कार उत्पन्न न हो पायेंगे। इसलिए नवयुवकों के लिए सच्ची शिक्षा पूरी तब ही हो सकती है, जब वे अपने पोथी-ज्ञान के साथ-साथ अपने को चारों ओर के विषैले प्रभावों से बचाकर अपनी आत्मिक व मानसिक शक्तियों का एक स्वतन्त्र और स्वस्थ वायुमण्डल में विकास करें। एक शब्द में वे अपनी परिस्थिति से दब न जायँ, प्रत्युत समय की आवश्यकताओं और उलझनों का सामना करते हुए अपने को स्व:सेवा एवं समाज-सेवा के योग्य बनायें।

इसके उपरान्त दो-चार बातें नवयुवकों के विचारार्थ और पेश करना चाहता हूँ। शिक्षा के कतिपय चिह्न नीचे लिखता हूँ। इनके बिना शिक्षा वास्तविक और उन्नतिकारक नहीं हो सकती।

पहिली बात जो शिक्षा से हमारे अन्दर आती है। उत्कृष्ट और सभ्य जीवन व्यतीत करने की योग्यता है। केवल जिन्दा रहना ही काफ़ी नहीं है (The art of life

and not mereey existing) । यह एक ऐमा गुण है, जिस का हमारे चरित्र में भाव या अभाव पग-पग पर हमारे हर छोटे-से-छोटे और बड़े-से-बड़े काम में प्रकट होगा। घर में, बाहर, व्यक्तिगत, सामाजिक, नैतिक, आर्थिक हमारे समस्त कार्यक्षेत्रों में हमारे बर्त्ताव से यह बात स्पष्ट हो जायगी कि हमको जीवन-कला (Art of life) आती है या नहीं। हमारे व्यवहार में वह सुचारुता, सरलता, चातुर्य तथा सभ्यता है या नहीं, जिससे हम अपने सामाजिक वायुमण्डल में प्रेम और मिठास की लहर पैदा कर सकें?

दूसरे, अपनी प्राचीन संस्कृति और सभ्यता के लिए उचित गौरव पैदा होना भी सुशिक्षा का ही फल होता है। परन्तु इस सम्बन्ध में यह ध्यान रहे कि हमें अपने ऊपर झूठा गर्व और अहंकार पैदा न हो जाय। वास्तविक शिक्षा का लाभ यह है कि हम अपने पूर्वजों के उपलब्ध किये हुए ज्ञान, विद्या, संस्कृति को वास्तविक क़ीमत (Value) और उसके मौलिक-सिद्धान्तों को समझें। दूसरे अपने पूर्वजों के गुण, अवगुण, विजय-पराजय तथा अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के कामों से शिक्षा ग्रहण करना सीखें, जिससे उन्नति का प्रवाह बन्द न होने पाये। संसार के इतिहास में कोई युग ऐसा नहीं था, जिसे हम सर्वांग परिपूर्ण (Perfect) कह सकें।

उन्नति और अवनति, विद्या और अविद्या, सभ्यता और असभ्यता की सापेक्षिक (Relative) मात्रा के अनुसार ही हम किसी जाति या युग विशेष को उन्नत या अवनत कहते हैं। फिर यह भी याद रखना चाहिये कि जो सिद्धान्त वा चलन अथवा परिपाटी और रीति-रिवाज एक युग विशेष या देश विशेष के लिए योग्य या लाभकारी होता है, दूसरे देश या युग की परिवर्त्तित परिस्थिति में वह हानिकारक हो सकता है। आजकल प्रायः विचारशील शिक्षित समुदाय में दो प्रकार के लोग मिलेंगे— एक तो वे जो प्राचीन काल की प्रत्येक बात को अच्छा और हर तरह से परिपूर्ण कहना और आजकल की हर बात को तुच्छ और हानिकारक बतलाना अपना धर्म समझते हैं। दूसरे वे हैं जो इसके प्रतिकूल यह समझते हैं कि जो कुछ उन्नति हुई है वह इसी काल में हुई है। प्राचीन काल तो असभ्य और अन्धकारमय था। ये दोनों विचार निर्मूल हैं। इन दोनों प्रकार के विचारों के कारण ही हमारी उन्नति रुक जाती है। जो लोग यह समझते हैं कि प्राचीन काल को फिर से वापस बुला लें और इतिहास को वापस लौटा दें, वे ऐसी ही भूल में हैं जैसा वह व्यक्ति जो किसी दरिया के प्रवाह को उलटा बहाना चाहता हो। जो लोग पुराने को बिल-

कुल व्यर्थ और तुच्छ समझकर उसे बिलकुल भुला देना चाहते हैं, वे ऐसा ही प्रयत्न कर रहे हैं जैसा कोई बिना बुनियाद में हवा में मकान बनवाने का यत्न करे अथवा गंगा का उसके स्रोत से सम्बन्ध तोड़ कर उसे हरिद्वार या गढ़मुक्तेश्वर से प्रवाहित करना चाहे।

उन्नति का रहस्य यह है कि हम जमे तो रहें अपनी प्राचीन नींव पर और आगे को बढ़ते जायँ या ऊपर को उठते जायँ—शिथिल होकर बैठ न जायँ।

इसी ऊपर के कथन से एक और आवश्यक बात निकलेगी। हमारे अन्दर भले बुरे को पहचानने और उसे ग्रहण करके पचाने की शक्ति (Power of selection and assimieation) पैदा होगी। उदाहरणार्थ आजकल हम पाश्चात्य जातियों से अनेक नागरिक, सामाजिक व नैतिक गुण सीख सकते हैं। जिनका हम में अभाव-सा हो गया है। इसमें बड़ी चतुरता और बुद्धिमता से काम करने की आवश्यकता है। यह गुण भी हमारे अन्दर वास्तविक शिक्षा से ही पैदा हो सकता है।

चौथे, हमारे शिक्षालयों में स्वास्थ्य की कोई परवाह नहीं की जाती है। शारीरिक स्वास्थ्य का विषय

का एक स्वतन्त्र लेख का विषय है, पर शिक्षा के विषय सामान्य रूप से अनुशीलन करने में स्वास्थ्य पर कुछ कहना आवश्यक है। हमारे स्वास्थ्य में वैज्ञानिक विचार का अभाव-सा ही है। स्वास्थ्य को ठीक रखने में नियमित जीवन, स्वच्छ जलवायु-सेवन इत्यादि का जितना महत्व है, उतना ही महत्व भोजन-शास्त्र का होना चाहिये; परन्तु भोजन-व्यवस्था पर बड़े-बड़े विश्व-विद्यालयों में भी कोई विचार नहीं किया जाता। प्रायः विद्यार्थी-जगत् आजकल दो पाप करता है—(१) अधिक भोजन और (२) हानिकारक भोजन किसी भी सच्ची शिक्षा का आवश्यक अंग है कि हम को यह सिखलाये कि हमें कैसे, क्या और कितना भोजन करना चाहिये।

अन्तिम बात जो मैं इस संक्षिप्त लेख में मैं लिखना चाहता हूँ वह यह है कि आधुनिक काल की अत्यन्त गहन समस्या 'आर्थिक' है। वह शिक्षा बिलकुल निकम्मी और अधूरी है, जो हमको इस योग्य नहीं बनाती कि हम इस समस्या पर पूरी तरह से विचार कर सकें और वैयक्तिक तथा सामाजिक पहलू से इस प्रश्न का समाधान कर सकें।

कुमार-जीवन

स्वर्गे लोके न भयं किंचनास्ति
न तत्र त्वं न च जरया बिभेति।
उभे तीर्त्वा शनाया पिपासे
शोकातिगो मोदते स्वर्गे लोके ॥

—कठोपनिषत्, अध्याय १, वल्ली १, मन्त्र १२

युवास्यात्साधुयुवाध्यायकः आशिष्ठो द्रढिष्ठो बलिष्ठः।

तैतरीयो० ब्रह्म० वल्ली ८

इन स्थलों को पढ़ने पर सहसा प्रतीत होता है कि मानों उपनिषत्कार कुमारावस्था के सुखमय-जीवन की एक झाँकी हमें देना चाहते हैं। यह अवस्था है, जिसमें हृदय की उमङ्गें तरल होती हैं—उसमें रह-रहकर उत्ताल तरंगें उठती हैं—मनोरथ का वेग थामे नहीं थमता। प्रवाह

अनियन्त्रित जल-प्लावन की वेगमयी धारा के रूप में होता है—जिधर उसकी उग्र गति के अनुकूल दिशा प्राप्त हुई उधर ही अनवरुद्ध गति से वह बह जाता है। जीवन के क्रान्तिकारी परिवर्तनों का कुमार-जीवन-काल ही क्रीड़ा स्थल है! जगत के परम पावन पुण्य प्रवाहों का वही मौलिक उद्गम स्थान है। न वहाँ कोई भय है, न बुढ़ापा! न मृत्यु! न भूख, न प्यास—आत्मा के आन्तरिक आनन्द से ओतप्रोत वह क्षणभर का सुन्दर जीवन शेष आयु के लिए अमिट मधुर-स्मृतियों का मोहक संगीत है।

वहीं से कोई मूलशंकर की दिव्य भावनाओं का वेग प्राप्त कर सका तो आगे चलकर ऋषि दयानन्द बनता है। शंकर की प्रतिभा से प्रेरित हुआ तो जगद्गुरु शंकराचार्य बनता है, और इसी स्थल से बुद्ध भगवान और भर्तृहरि का उदय होता है। इसी जीवन के प्रसाद से रत्नाकर के वाल्मीकि और सिद्धार्थ के बुद्ध बने हैं।

जेम्स ए. गार्फील्ड के जीवन में लेखक ने सुन्दरता के साथ बताया है कि किस प्रकार एक ही मकान के छाजन पर पड़नेवाले पानी की बूँद तनिक ढलाव के कारण भिन्न-भिन्न प्रवाह ग्रहण कर लेती हैं, और किस प्रकार, इसी तरह कुमारों के जीवन में, जो संग ही एक सी ही परिस्थिति में उत्पन्न हुए, बाल-क्रीडा एक ही क्षेत्र में बरसों तक करते रहे,

खानपान का एकसा ही रूप रही, एक नन्हे से भेदक क्षेत्र और क्षण से अपने जीवन की धाराओं को भिन्न-भिन्न प्रवाहों में बँटा पाते हैं ! तत्संगति सुलभ हुई तो रामादि की नाईं मर्यादा पुरुषोत्तम बन सके, कुसंगति में पड़े तो रावणादि की नाईं अनन्तकाल तक लोक की घृणा के पात्र बनकर सदा हँसे जाते रहे !

कुमार-जीवन ही मुद्रित होनेवाली (Impressionable) आयु है। जैसा ठप्पा उस समय हृदय पर लगता है वैसा ही झुकाव भविष्य जीवन का हो जाता है।

"यस्तु विज्ञान-वान्भवति समनस्कः सदा शुचिः ।
सतु तत्पदमाप्नोति यस्माद्भूयोन जायते ॥
विज्ञान सारथिर्यस्तु मनः प्रग्रह वान्नरः ।
सोऽध्वनः पारनोति तद्विष्णो परमम् पदम् ।"

उस काल में यदि इन्द्रियों पर संयम रहा—मन, बुद्धि में पवित्रता रही तो, जैसे संयत घोड़ों वाला सारथी अपने ध्येय पर पहुँचता है, उसी प्रकार संयमी इन्द्रियोंवाला पवित्र-आत्मा, सच्चरित्र परम पद को प्राप्त होता है। कुमार यदि कुमार-काल में अपने आपे पर अधिकार जमाये रह सका तो वह भावी जीवन में अपनी कामनाओं, अपने ध्येयों और आकांक्षाओं (Ambitions) को पूरा करने में समर्थ होता है। इसके विपरीत यदि वह इन्द्रिय-निग्रह में

कच्चा रहा तो अच्छे मनोरथ कच्चे मकान की तरह पानी के कोमल थपेड़ों से ही गिर जाते हैं। उसी अवस्था का चित्रण उपनिषत्कार ने इस प्रकार किया है—

"यस्त्वविज्ञानवान्भवति अमनस्कः सदाऽशुचिः।
न स तत्पदमाप्नोति संसारं चाधि गच्छति॥"

जो संसारचक्र का कीड़ा बना रहता है, वह उस पद को प्राप्त नहीं कर सकता।

वही कुमार कुमार है—वही वास्तविक कुमार भाजन है, जिसे इन्द्रिय संयम है। क्योंकि

"नवे वयसि यः शान्तः सशान्त इति मे मतिः।"

जो नई अवस्था में शान्त है, वही शान्त है। यदि वृद्धावस्था में शान्त हुआ तो बुझी हुई आग तो सदा ही राख बनती है। प्रशंसा तो तब, जब जलती और भड़कती आग में प्रशान्त जल की सी शीतलता हो। जो संसार भर को अपनी ज्योति से जगमगित करने-वाली ऊष्मा से भरा हुआ होने पर भी शीतल हो जैसे अपने भीतर से बिजली उत्पन्न करनेवाली जल राशि होती है। शुक्र का परिपाक प्रारम्भ होकर अपनी चरम सीमातक पहुँचने का प्रयत्न पूरा कर चुका होता है। आँखों में एक चमकती-छलकती ज्योति होती है। कपोलों पर लालिमा की छाप, ललाट पर दमकता तेज,

मोहक मुखाकृति, नासिका-पुट पर ओज ! ओह, कैसी गम्भीर मुद्रा दृष्टि आती है—एक आदर्श कुमार की वह शोभा ही वाल्मीकि के इन शब्दों में अङ्कित हुई है—

'समश्च समविभाक्ताङ्ग'

"कस्य विभ्याति देवाश्च जातरोषस्य संयुगे ।"

"समुद्रइव गांभीर्ये क्षमय पृथिवीसमः"

"स्मितपूर्वाभिभाषी च ।"

अङ्ग-अङ्ग से सुडौल, सुन्दर, अपने मन्यु से दुष्टों को दहलानेवाला, गम्भीरता में समुद्र, क्षमा में पृथिवी और मंद मुसकान के साथ बोलने में माधुर्य की रस-वर्षा करनेवाला आदर्श व्यक्ति होता है। कुमार-जीवन में प्रत्येक अङ्गों का पूर्ण विकास होकर ऊपर को आकृति और मुद्रा विकसित हो उठी होती है।

"यताकृति स्तत्र गुणा वसन्ति ।"

जहाँ आकृति है, वहीं गुण होते हैं—ऐसे सुन्दर शरीर में जिसका ऊपर उल्लेख किया है गुणपूर्ण आत्मा रहती है—फलतः कुमार-जीवन आरंभ में बतायी गयी तैत्तिरीयोपनिषद्गत ब्रह्मानन्द वल्ली में पठित वह साधु युवा होता है, जो सब प्रकार शिष्ट है। जिसका अङ्ग-अङ्ग दृढ़ है—जो बली है। मनसा-बली शरीर से बली, चरित्र से बली, आचरण में दृढ़, शरीर में दृढ़, और व्यवहार में

कुशल—ऐसा ही कुमार भविष्य की सुन्दर नागरिकता का केन्द्र-विन्दु है।

कुमार को इस आदर्श-जीवन में लाने के लिए एकमात्र सत्संगति अपेक्षित है। अमेरिका के एक लेखक पर एक विद्यार्थी के पिता ने हर्जे का दावा किया, इसलिए कि उसने जो पुस्तक लिखी वह इतनी बुरी थी कि उसे पढ़कर उस का लड़का बर्बाद हो गया। जज ने अपने निर्णय में लेखक को सम्बोधित करके लिखा, "मैं यह पसन्द करता कि कि मेरे लड़के को साँप काट ले, परन्तु यह पसन्द न करता कि आपकी इस पुस्तक को वह पढ़े!" कुसंग का सचमुच कुमार-जीवन पर इतना ही तीव्र प्रभाव पड़ता है।

वासनाओं के परिपाक, प्रवाहों के निश्चित मार्ग इसी आयु में निश्चित होते हैं। अतः यह आयु बड़ी सावधानी से घिरी रहनी चाहिये। इसी समय के लिए विहारी ने कहा था—

> "इक भीगे चहले परे बूड़े बहे हजार।
> किते न अवगुन जग करे नय वय चढ़ती बार॥"

कुमार को सुन्दर प्रभावों में रखने ही के लिए—उसे कुसंस्कारों से सुरक्षित बनाने के लिए ही पूर्वाचार्यों ने उच्च स्वर से उसके लिए सुन्दर आदर्श निश्चय किये थे—उससे कहा था—

> "स्वाध्यायान्माप्रमदः" "स्वाध्यायोऽध्येतव्यः"
>
> "स्वाध्याय प्रवचनाभ्यां मा प्रमदितव्यम्"

स्वाध्याय में तत्पर रहा कर, निर्भय रहा कर और ईश्वर से याचना कर कि

"यथा द्यौश्च पृथिवी च न बिभीतो न रिष्यत एवा मे प्राण मा विभे। यथा अहश्च रात्री च न बिभीतो न रिष्यत एवा मे प्राण मा विभो ॥

दिन-रात, सूर्य-चन्द्रमा, द्यौलोक-पृथिवी, लोक-सत्य अनृत, ब्राह्मण-क्षत्रिय की नाईं मेरे प्राण निभय हों, कभी न डरूं। मेरी काया दृढ़ हो, मेरी आयु लोक-सेवा के लिए अर्पित हो। कानों से न निन्दा सुनूं, न वाणी से निन्दा करूँ "भद्रं कर्णेभि:शृणुयामि देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्रा स्थिरैरंगैश्शुष्टुवां सस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायु:"।

इस प्रकार उच्चतम भावनाओं के लक्ष्य को अपने जीवन का साध्य निर्धारित करने का जीवन-काल ही कुमार-जीवन है। जिस कुमार ने इस अवस्था में जागरूकता से काम लिया—ऊँची भावनाओं,

सत्संगति में पड़ा रहा वह जाता, नहीं तो हारा,
और बेचारा सारे शेष जीवन में फिरा मारा मारा।

झण्डा झुकने न दो !!

भारतीय भावना के सुन्दर शरीर पर,
पश्चिमीय सभ्यता का ठप्पा ठुकने न दो।
कर्मवीरता के सच्चे सेवक-सिपाही बनो,
धर्म-धीरता की ध्रुवधारा रुकने न दो ॥
तेज-बल धारो, वैरियों को ललकारो, कभी
हिम्मत न हारो शक्ति-कोष चुकने न दो।
डट जाओ, कट जाओ पैर पीछे न हटाओ,
वैदिक क़िले का वीरो झंडा झुकने न दो !!

मनुष्य और समाज

उन्नति के मुख्य साधन धर्माचरण और प्रचार

मनुष्य की उन्नति और अवनति समाज की उन्नति और अवनति के साथ बँधी हुई है। व्यक्तिगत उन्नति और विकास समाज ही के सहारे चलते हैं, यह बात हमें अच्छी तरह अनुभव कर लेनी चाहिये। व्यक्ति समाज का एक अङ्ग है। व्यक्ति के चरित्र और कार्य का अच्छा या बुरा प्रभाव समाज पर अवश्य पड़ेगा और समाज की भली और बुरी दशा का प्रभाव व्यक्ति पर पड़ना अनिवार्य है। श्रीस्वामी जी महाराज ने आर्य्य-समाज के ९वें नियम में क्या ही मर्म की बात बतायी है कि "प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट न रहना चाहिये, किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये।" क्योंकि स्वार्थ की

दृष्टि से भी देखा जाय तो हमारे गुणों और योग्यताओं का मूल्य हमारी समाज की दशा के अनुसार होगा। समाज यदि मान्य है, तो हमारा मान होता है, समाज यदि अपमानित है, तो हमारा भी अपमान होता है और सैकड़ों प्रकार से हानि होती है।

समाज के साथ हमारे इस गूढ़ सम्बन्ध को समझने के बाद हमें स्वयं यह विचार आयेगा कि समाज की दशा ऐसी क्योंकर हो कि यह हम सबके सुख और कल्याण का हेतु बन सके। इसके लिए पहली और सबसे बड़ी आवश्यकता यह है कि हर व्यक्ति अपनी वैयक्तिक आवश्यकताओं और इच्छाओं की पूर्ति में प्रथम तो सत्य और न्याय को न भुलावे और दूसरे औरों के सुख-दुःख का ध्यान रखे। इससे झगड़े पैदा न होंगे और परस्पर प्रेम बढ़ेगा और समाज बलवान होता जायगा। जिस समाज में सत्य, न्याय और प्रेम के प्रचार और प्रसार का उत्तम प्रबन्ध है और फलतः आपस में व्यवहार इस ही की सुदृढ़ नींव पर होता है, वह उस समाज की अपेक्षा अधिक बलवान् होगा, जिसमें इसकी कमी हो। उदाहरण के तौर पर डाकुओं की समाज को लीजिये। १०-१५ आदमियों की इनकी एक टोली होती है। उनका उद्देश्य निकृष्ट होता है, लेकिन जहाँ तक उनकी अपनी टोली का सम्बन्ध है

उनका आपस का व्यवहार सचाई और विश्वास से परिपूर्ण होता है। कितना ज़बरदस्त नियंत्रण उन लोगों में होता है। रात को दो बजे अगर किसी को कहीं पहुंचने की आज्ञा मिली है तो ठीक दो बजे वहाँ पहुँचेगा। आलस्य और प्रमाद का नाम भी नहीं होता। जान की बाज़ी लगा देने में एक-एक आदमी ज़रा भी कसर नही छोड़ता। इसका कारण स्पष्ट है कि हरएक डाकू को यह पूर्ण विश्वास होता है कि उसकी टोलीमें उसके साथ विश्वासघात नहीं होगा—धन का जितना हिस्सा उसे मिलना है वह अवश्य मिलेगा—और अगर उसकी जान भी चली जायगी तो भी उसके बाल-बच्चे भूखे न मरेंगे।

यदि हम इन डाकुओं के छल-कपट, मार-कूट को ज़रा देर के लिए अपनी दृष्टि से ओझल कर दें तो हमें यह स्वीकार करना होगा कि इनका आपम में धर्मयुक्त आचरण ही इनके संगठन और सफलता का मूल कारण है। इस के ही बल से यह १०-१५ आदमियों की टोली हज़ारों की बस्ती पर भारी पड़ जाती है। सारांश यह है कि बल चाहे शारीरिक हो या सामाजिक बिना धर्म के प्राप्त नहीं होता।

अब और आगे बढ़िये। यह टोली हारती किन से है? उनसे, जिनमें धार्मिक-व्यवहार का क्षेत्र इनके क्षेत्र से अधिक व्यापक होता है। संख्या को बढ़ाते जाइये,

धार्मिक-व्यवहार और फलतः आपस में प्रीति रखनेवाली यह संख्या जितनी बड़ी होगी उतना ही उस टोली या दल का बल भी बड़ा होगा, परन्तु यह न भूल जाइये कि संख्या स्वयं कोई महत्त्व रखनेवाली वस्तु नहीं है। धर्माचरण मुख्य है, जिसके साथ मिलकर संख्या काम की चीज़ बन जाती है। इस प्रकार जिस मनुष्य-समुदाय की दृष्टि विशाल और धर्माचरण उनके जीवन का प्राण हो जाता है, वह डाकू नहीं, सुसंगठित, सुदृढ़ शक्तिशाली और माननीय राष्ट्र बन जाता है, जिसके व्यक्तियों को अपमानित करने का कोई साहस नहीं करता। इस प्रकार अन्दर के सामाजिक सुख से परिपूर्ण रहकर और बाहर के आक्रमणों के दुःख से बचे रहकर यह समाज अर्थात इसके सब व्यक्ति उन्नति के पथ पर बढ़ते चले जाते हैं।

इसीलिए ऋषि ने आर्य्य-समाज के नियमों में कितने मर्म की बात बतलाई है—

(४) सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सदा उद्यत रहना चाहिये।

(५) सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहियें।

(६) सबसे प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य बरतना चाहिये।

ऊपर हमने बतलाया कि डाकुओं के बल का कारण उनका आपस का सत्य और धर्म का आचरण है; परन्तु इनका यह आचरण केवल इनकी टोली तक अर्थात् अत्यन्त संकुचित क्षेत्र में सीमित है। इसलिए वे समुदाय जिनसे इनको कष्ट पहुँचता है, आपस में संगठित होकर इनकी टोली को समाप्त कर देते हैं और इस प्रकार डाकुओं की टोली के अल्प-जीवन का दोष उनके आदर्श में है। अपनी छोटी टोली का सुख और दूसरों की धन-सम्पत्ति को हड़पना छोड़कर यदि इस टोली के आदर्श ऊँचे होते, तो इनका हृदय भी विशाल होता और ऐसे आदर्श की पूर्त्ति के लिए उनका धर्माचरण संकुचित न रह सकता। उनकी समझ भी सीधी होती और वह जान जाते हैं कि सबकी उन्नति और सुख में ही उनकी उन्नति और सुख है। अतः धर्माचरण के साथ हमें यहाँ आदर्शों को ऊँचा रखने और हृदयों को विशाल बनाने की आवश्यकता और महत्त्व भली प्रकार प्रतीत होता है। स्वामी जी ने इसीलिए हमारे सामने एक अत्यन्त उदार और इतना ऊँचा आदर्श रखा है, जितना कि सम्भव हो सके; अर्थात् "संसार का उपकार करना" जिसके लिए "अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करना।"

यह समझ में नहीं आता कि ऐसे आदर्शों और उद्देश्यों

को रखते हुए हम संसार में अप्रिय और विरोध का कारण कैसे हो सकते हैं; और अगर होगये हैं, तो इसमें हमारा अवश्य कुछ दोष है। शायद हम ऋषि के शब्द "प्रीति-पूर्वक" पर ध्यान नहीं देते और अपने अहंभाव को प्राधान्य देते हैं और अपने भावों और बिचारों को दूसरों पर अनुचित ढङ्ग से प्रकट करते हैं, या यूँ कहिये कि दूसरों पर लादते हैं।

इन सद्व्यवहारों, उद्देश्यों और आदर्शों का ज्ञान कहाँ से और किस प्रकार प्राप्त हो सकता है, यह पहले तीन नियमों में प्रकट किया गया है।

इतने उच्च आदर्श, वेद, दर्शन और शास्त्र आदि धर्म-ग्रन्थ होते हुए भी हम क्यों इतने पतित हो गये हैं, इसके मर्म को समझ लेना अत्यावश्यक है। बात यह है कि मनुष्य का स्वभाव बार-बार भूल करने का है। जानते हुए और समझते हुए भी ठीक समय पर मनुष्य अपने उच्च आदर्श को भूल जाता है। इसलिए यह आवश्यक है कि उसको बार-बार प्रकार-प्रकार से उसके आदर्शों और उद्देश्यों की याद दिलाई जाती रहे। इसी का नाम प्रचार है। जब प्रचार में शिथिलता आती है, तो सामूहिक जीवन में शिथिलता आनी अनिवार्य है; क्योंकि सोसाइटी, समाज या राष्ट्र आदर्शों और उद्देश्यों की एकता से ही संगठित होता

है। हमारे प्रचार की शिथिलता और इस्लाम के निरन्तर प्रचार के कारण ही मध्यएशिया, अफगानिस्तान, बलोचिस्तान इत्यादि देशों की वीर आर्य्य-जातियाँ सहज ही में मुसलमान हो गईं, और क्योंकि हिन्दुस्तान में हमारा प्रचार ब्राह्मणों द्वारा कुछ-न-कुछ चलता रहा, इसीलिए यहाँ इसलाम को वह सफलता प्राप्त नहीं हुई। आज हमारे प्रचार की शिथिलता के कारण ही हमारे ऊँचे उद्देश्य और आदर्श होते हुए भी दूसरे लोग हमारे उद्देश्यों को मानते हुए भी हममें आकर मिल नहीं जाते, बल्कि अब भी हमारे में से निकलकर ईसाई और इसलाम धर्म को स्वीकार कर रहे है। कारण यही है कि हमारा प्रचार शिथिल है और ईसाईयत और इसलाम का प्रचार अब भी बड़े तीव्र वेग से जारी है। जो कुछ हमारी संस्कृति बाक़ी रह गयी है, उसके लिए हमें अपनी माताओं और ब्राह्मणों का उपकार मानना पड़ेगा, चाहे स्वार्थ-साधन ही के लिए सही, मगर अब भी यह ब्राह्मण-देवता हर अष्टमी और पूर्णमासी को और अन्य तीज-त्योहारों पर हमारे घरों पर पहुँच जाते हैं और पैसा-दो पैसा ही सही, दक्षिणा लेकर आशीर्वाद दे आते हैं। स्त्रियों में पुरानी संस्कृति को याद रखने के लिए इतना भी काफ़ी होता है।

तात्पर्य यह है कि प्रचार संस्कृतियों का रक्षक, आदर्शों का स्मारक और समाज या राष्ट्र को एक ढङ्ग के विचारों के रँग में रँगनेवाला और सभ्यताओं और धर्मों का जीवन है। आर्यसमाज में प्रचार की बड़ी कमी है। पुराने हिन्दू धर्म के प्रचार का शतांश भी नहीं है। इसलिए हम भी वही पुराना सड़ा हुआ हिंदू-जीवन व्यतीत कर रहे हैं। वही बिरादरियों के बंधन, वही आपस की फूट और लड़ाई-झगड़े, सभा और सोसाइटियों में भी तू-तू मैं-मैं इत्यादि पुराना सड़ा हुआ जीवन चल रहा है। हम भी संपत्ति बटोरने, जायदाद बनाने, मंदिर निर्माण करने में लग गये हैं। एक क्रान्ति की अवश्यकता है और आशा है कि आर्य-कुमार अपने वैयक्तिक जीवनों को उच्च और महान् बनाते हुए सामाजिक जीवन को भी परिवर्तित कर देंगे और यह अच्छी तरह समझ लेंगे कि हमारे समाज का मुख्य काम केवल संपत्ति अर्जन और उसकी रक्षा नहीं हैं, बल्कि ऐसे मनुष्यों का उत्पन्न करना है जो जीवन के हर पथ में धर्म भाव और योग्यता से इतने विश्वसनीय सिद्ध हों कि बड़े-से-बड़े काम और बड़ी-से बड़ी संपत्ति निःसंकोच पूर्ण विश्वास के साथ उनके अर्पणकी जा सके। ऐसे लोग पैदा हों कि समाज तो समाज समाज से बाहर भी लोगों को आर्यों की माँग हो। हर

जगह लोगों के हृदयों में यह बात बैठ जाय कि व्यवहार हो तो किसी आर्य से, कि ये अत्यन्त सच्चे और उद्योग प्रिय होते हैं, इनकी सचाई और वीरता माधुर्य और शिष्टाचार को लिये हुए होती है। सौदे-सल्फ के लिए आर्य दुकानदारों की खोज हो। मुकद्में के लिए आर्य वकील ढूँढे जायँ और बीमारों के हृदयों से सदा यही निकले कि हे ईश्वर संसार आर्य डाक्टरों और वैद्यों से भर जाय। मजदूर भी आर्य खोजे जावें कि यह अपने काम में सिध्दस्त और उद्योगी होते हैं जिनपर देखभाल की आवश्यकता ही नहीं होती।

सारांश यह कि हम समाज के साथ इतने बँधे हुए हैं कि समाज अर्थात् सोसाइटी की उन्नति के साथ हमारी उन्नति है और सोसाइटी की अधोगति के साथ हमारी अधोगति है। समाज को उन्नत करने के लिए ऊँचे आदर्शों, उद्देश्यों और आपस में धर्माचरण की अत्यन्त आवश्यकता है। आदर्शों क याद बनाए रखने और धर्माचरण के लिए बार बार प्रेरित करने के लिए निरंतर प्रचार की आवश्यकता है और प्रचार तनख्वाह पाने वाले नौकरों से नहीं बल्कि सच्चे सन्यासियों द्वारा ही संभव हो सकता है।

आर्य्य-युवकों का कलङ्क

"संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।"

यह है आर्य्य-समाज का छठा नियम और उसका मुख्य उद्देश्य। इसमें जिस महर्षि ने सबसे प्रथम शारीरिक-उन्नति को स्थान दिया, उस ऋषि दयानन्द के शाहज़ादों के लिए आज उनके शरीर ही उनके सबसे बड़े कलङ्क बने हुए हैं। हमारे बच्चों, कुमारों और युवकों के निर्वीर्य शरीर, निस्तेज नेत्र, दूर से ही पसलिएँ गिन लो। ऐसे वक्षस्थल, नित्य क़ब्ज़कारिणी अंतड़िएँ—धड़कनेवाले दिल, अजीर्ण के कारण पित्तशून्य जिगर, सदा ज़ुक़ाम से पीड़ित नाक, थोड़े परिश्रम में थकजानेवाले हाथ-पाँव और सदा नाना रोगों से पीड़ा पानेवाले शरीर उनके लिए और
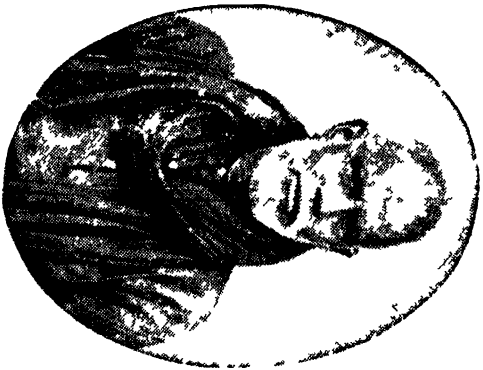
महात्मा नारायण स्वामी (लाहौर सम्मेलन के सभापति)

स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज
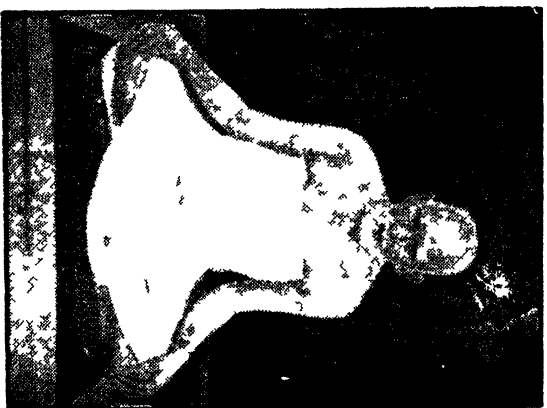
सबसे अधिक आर्य्य-समाज के लिए कलङ्करूप दिये हैं। अगर हम यह कहें कि हमने तो कुमारों की आत्माओं को ऊँचा किया है, उनको सच्चरित्रता का पाठ पढ़ाया है, हमने उनको सामाजिक स्वतन्त्रता दी है, तो हम अपने को धोखा देते हैं और घोड़े के आगे गाड़ी जोतकर कोसों का सफ़र करने का सुख-स्वप्न देखते हैं। याद रखिये दुर्बल शरीर-वाले न सामाजिक स्वतन्त्रता का उपभोग कर सकते हैं और न आत्मिक आनन्द का! शरीर ही सब क्रियाओं का आधार है। **स्वच्छ शरीर में स्वच्छ मन और बलवान् शरीर में बलवान् मन निवास करता है,** अस्वस्थ शरीर में स्वस्थ मन निवास नहीं कर सकता। एक पुरानी कहावत है कि "प्रथम सुख निरोगी काया" और यह भी कहा जाता है कि "काया राखे धर्म।" शरीर ही धर्म और मोक्ष का मूल है। शरीर की चिन्ता न करना महान् पाप है। आज हम इस पाप के भागी हैं और हमारा, ख़ास तौर से माता-पिताओं का कर्त्तव्य है कि कुमारों के शरीरों की ओर पूर्ण ध्यान दें। भगवान ने हमारी आत्मा के निवास के लिए हमें यह दिव्यधाम दिया है। सबसे पहला कर्त्तव्य हमारा यह है कि इस दिव्यधाम को हम सुन्दर, स्वस्थ और सुरक्षित रखें।

ब्रह्मचर्य्य व्यायाम और सात्त्विक आहार स्वस्थ शरीर के लिए यह तीन मुख्य चीजें हैं।

ब्रह्मचर्य्य के बिना शरीर में तेज उत्पन्न नहीं हो सकता। छोटी उमर में जिनके ब्रह्मचर्य्य नष्ट हो जाते हैं, उनकी ज़िन्दगिएँ कम हो जाती हैं। २५ वर्ष तक जो अखण्ड ब्रह्मचारी रहेगा वही "शतं जीवेमशरद" सौ वर्ष जीवन की आशा रख सकता है। बालकों को कुसंगति से बचाना और उनके ब्रह्मचर्य्य की रक्षा करना, यह तो पहला कर्त्तव्य है जो शारीरिक उन्नति का मूल है। कुमारों के सम्मुख इतना ही कहना काफ़ी है कि जैसे कंजूस अपने सुवर्ण की रक्षा करता है, ऐसे ही वीर्य्य-रक्षा करो। ओज, तेज, आनन्द, स्वास्थ्य सब वीर्य के आधीन है। जिनके विवाह हो चुके हैं, वे जितना ब्रह्मचर्य्य का पालन करेंगे, उतनी ही अपने अन्दर शक्ति पायेंगे, करके देखलो। कहने की ज़रूरत नहीं। इस सम्बन्ध में माता-पिता को अपने बच्चों की संगति का पूरा ध्यान रखना चाहिये। सत्संग ब्रह्मचर्य्य का रक्षक और कुसंग उसका दुश्मन है। सिनेमा, थियेटर वीर्यरक्षा के विरोधी हैं। केवल धार्मिक अच्छे खेल-तमाशे ही कुमारों को देखने और दिखलाने चाहिये।

नित्य प्रति का व्यायाम ब्रह्मचर्य की रक्षा करता है और शरीर को उन्नत। शारीरिक उन्नति के लिये शरीर के हर एक

हिस्से को उन्नत करना आवश्यक होता है। महज़ डण्ड बैठक करके या दूसरी ऐसी कसरतें करके जिनमें शरीर की मांस पेशियों (Muscles) पर ही ज़ोर पड़ता है—डौले वग़ैर को बड़ा कर लेना और शरीर के दिखाव को खूबसूरत बना लेने का ही नाम शारीरिक उन्नति नहीं। शारीरिक उन्नति के लिए तो ऐसा व्यायाम होना चाहिये, जिससे कि शरीर के तमाम हिस्से मज़बूत और तन्दुरुस्त होजायं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि एक तन्दुरुस्त आदमी के लिए शरीर को थकानेवाले काम ही व्यायाम का काम दे जाते हैं और ऐसे आदमी के लिए पन्द्रह बीस मिनिट का कठिन व्यायाम उसके स्वास्थ्य को ठीक रखने के लिये काफ़ी है। परन्तु हम जानते हैं कि हमारा रहन-सहन और खान-पान इतना कृत्रिम और खराब है कि किसी भी व्यक्ति का शरीर निर्दोष नहीं कहा जा सकता। वंश परम्परा से कई कमज़ोरियाँ चली आती हैं; जिनपर बालक का कोई बस नहीं होता; जैसे कई बच्चों की छाती कमज़ोर होती है और उनको बारबार निमोनिया वगैरः सांघातिक बीमारियों का शिकार होना पड़ता है। इस तरह हम देखते हैं कि सब लोग किसी न किसी प्रकार की कमज़ोरी के शिकार हैं। ऐसी दशा में स्वस्थ मनुष्यों के लिए उपयोगी व्यायाम सर्वसाधारण लिए पर्याप्त

कहकर बात को टाला नहीं जा सकता। स्वस्थ मनुष्य के सामने तो केवल एक ही काम होता है कि वह परिश्रम करके खून में गति उत्पन्न कर दे जिससे कि सारा शरीर अन्दर से धुल जाय। स्वास्थ्य रखने के लिए उसको इससे अधिक कुछ करने की आवश्यकता नहीं। जैसे एक सुन्दर रचनावाले साफ़-सुथरे मकान को साफ़ रखने के लिए एक झाड़ू लगा देना काफ़ी होजाता है परन्तु एक ऐसे मकान को साफ करने के लिए, जिसमें मनों कबूतरों की बीटें जमा हों; जिसके दरवाजों की दराजों में चिमगादड़ों के अड्डे हों; जिसकी दीवारों में मकोड़ों के बिल हों; जिसकी दीवारें भीतर से खोखली हों और उनमें भिड़ों के छत्ते हों-भला ऐसे मकान को कौन अक्लमन्द एक झाड़ू मारकर साफ़ कर देने का हौसला कर सकता है। ऐसे मकान को साफ़ करने के लिए जिस तरह ख़ास तरीके अख़्तियार करने की जरूरत पड़ती है, ठीक उसी तरह आजकल के कुमारों के दीन-हीन, क्षीण, व्याधि ग्रस्त शरीरों को स्वस्थ बनाने के लिए भी ख़ास परिश्रम की, विशेष साधनों की, ज़रूरत पड़ती है।

मनुष्य-शरीर में वह विशेष-विशेष स्थान या अंग जिनके स्वस्थ या अस्वस्थ होने का सारे शरीर पर प्रभाव पड़ता है यह हैं—पेट, छाती, रीढ़ की हड्डी, और गिल्टियाँ।

मनुष्य के डौले चाहे जितने बलवान् हों; मनुष्य की रानें चाहे जितनी भरी हुई हों, यदि उसका हाज़मा ठीक नहीं यानी पेट ठीक काम नहीं कर रहा और यदि उसकी छाती कमज़ोर है, यदि उसका वातनाड़ी-चक्र (Nervous system) ठीक नहीं तो वह स्वस्थ नहीं कहला सकता। इसलिए शरीर को काम करने में समर्थ बनाने के लिए पहले स्वास्थ्य की तरफ़ ध्यान देना चाहिये। स्वास्थ्य की तरफ़ ध्यान देने का मतलब यह है कि छाती, पेट, रीढ आदि जीवनदायी अङ्गों को निर्विकार और स्वस्थ बनानेवाली क्रियाएँ अर्थात् व्यायाम करने चाहियें और आहार-विहार का नियम ऐसा बनाना चाहिये कि जिससे ये अंग स्वस्थ रह सकें। जब इन अंगों को हम स्वस्थ करलेंगे, तब इससे आगे का दूसरा काम शरीर को पुष्ट और बलवान् बनाना बिल्कुल आसान होजाता है। साधारण परिश्रम से ही मनुष्य अपने शरीर को फिर तो देर तक अधिक काम करने या परिश्रम को सह सकने के लिए तैयार कर सकता है।

हमारा अभिप्राय यह बिल्कुल नहीं कि अपनी हीनावस्था को देखकर कुमार लोग निराश होजायँ या उनके अभिभावक अपना दिल छोटा करलें। हम तो उनको सचेत करने के लिए उनके सामने उनका नंगा चित्र रखना चाहते हैं, जिससे कि वे वस्तुस्थिति से अनभिज्ञ रहकर आत्म-

प्रवंचना के पाप के भागी न बनें। साथ-ही साथ हम यह भी बतला देना चाहते हैं कि यह क्लीवता अथवा निर्वीर्यता का कलङ्क दृढ़संकल्प के द्वारा दो वर्षों में भगाकर दूर किया जा सकता है। यदि कुछ उत्साही युवक मिलकर सचमुच चाहें कि आर्य्य-कुमारों के जीवनों में शान्ति हो जाय, तो कोई शक्ति उनको संकल्प से विमुख करनेवाली नहीं हो सकती और अपने शुभसंकल्प के अनुसार काम करते हुए आर्य्य कुमार चाहे तो व्यक्तिगत रूप से और चाहे समष्टिगत रूप से एक आदर्श केवल दो वर्ष में संसार के सामने पेश कर सकते हैं और अपने नाम पर लगे कलङ्क के टीके को मिटा सकते हैं।

आहार के सम्बन्ध में अधिक न लिखकर इतना ही लिखना काफ़ी होगा कि ब्रह्मचर्य्य और स्वास्थ्य दोनों पर खाने-पीने का बड़ा असर पड़ता है। कुमारों को ज्यादा खट्टा और मिर्च-मसाले का भोजन नहीं करना चाहिये। चाय, तम्बाकू, सिगरेट आदि का त्याग तो मुख्य है ही गोया नशीली चीज़ कभी छूनी तक नहीं चाहिये, और माता-पिता को चाहिये कि बच्चों को स्वस्थकर भोजन दें, हाथ का पिसा आटा, ताज़ी सब्ज़ियाँ, फल इत्यादि कुमारों के लिए हितकारी हैं। समय पर भोजन और उसे खूब चबाकर खाना ज़रूरी है। जितनी भूख हो, उतना ही

खाना चाहिये और अधिक खिलाने का अनुरोध न करना चाहिये। भोजन के बाद तुरन्त पढ़ना या दौड़-भाग करना भी ठीक नहीं। भोजन के सम्बन्ध में अपने नगर के वैद्य, डाक्टरों से परामर्श करके उचित व्यवस्था करना माता-पिता का कर्त्तव्य है और समय पर भूख के अनुसार परिमित भोजन करना और स्वाद के वश हो ज्यादा चटखोली और स्वास्थ्य व ब्रह्मचर्य्य को हानि पहुंचाने वाली वस्तुएँ न खाना कुमारों का कर्त्तव्य है।

इस प्रकार ब्रह्मचर्य्य, व्यायाम और सात्विक आहार द्वारा इस दिव्यधाम को सुन्दर और स्वस्थ बनाकर ही हम अपने आपको उन्नत कर सकते हैं। तमाम उन्नतियों की जड़ शरीर है। शरीर की अवहेलना करना जड़ को काटना है !!

राजनीति और आर्यकुमार

"संसार में राजनीतिक आन्दोलन की धूम है। भारत में भी राजनीति का डङ्का बजने लगा है। देश के आशांकुर नवयुवक राष्ट्र की पुकार सुन इस आन्दोलन में सम्मिलित होने से नहीं रुक सकते और न रुकने की आवश्यकता है। जिस प्रकार इस गये-बीते युग में भी धर्म की वेदी पर बलिदान देनेवाले अधिकतर आर्य पुरुष ही हैं, उसी प्रकार मैं चाहता हूँ कि देशके स्वातन्त्र्य-यज्ञ में हम लोग ही अपने शरीरों को आहुति रूप में डालें, हमारी अस्थियों की आधार-शिला पर ही राष्ट्रिय भवन का निर्माण हो और हमारे रक्त के परमाणुओं से ही उसकी दीवार उठाई जाय।"

—(स्वर्गीय) कालाकाँकर-नरेश

धैर्य

मनु महाराज ने अपने सुप्रसिद्ध श्लोक

"धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं, शौचमिन्द्रिय निग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकंधर्मलक्षणम्॥"

में धर्म के जो १० लक्षण बताये हैं, उनमें सब से पहला स्थान उन्होंने धृति वा धैर्य को दिया है। धैर्य शब्द के दो अर्थ होते हैं—(१) भयङ्कर से भयङ्कर आपत्तियों के आने पर भी न घबराना और कर्त्तव्य का पालन करते जाना। (२) कर्त्तव्य का पालन करने के लिए योग्य साहस वा निर्भयता। इन दोनों अर्थों में ही धैर्य आर्य-कुमारों के लिए अत्यन्त उत्तम और आवश्यक गुण है, इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं। जो आपत्तियों और विघ्न-बाधाओं के आने पर घबरा जाता है, वह कभी

आदर्श महापुरुष नहीं बन सकता। स्थितप्रज्ञ पुरुष का लक्षण बताते हुए योगिराज श्रीकृष्ण महाराज ने गीता में कहा है—

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः, सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतराग भयक्रोधः, स्थित धीमुनिरुच्यते॥

अर्थात् स्थिर बुद्धियुक्त मुनि वह कहा जाता है, जिसका मन दुःखों के आने पर कभी घबराता नहीं और सुखों की स्पृहा अथवा चाह भी जिसके अन्दर नहीं जो राग, भय और क्रोध से रहित है। इस आदर्श अवस्था को प्राप्त करने का सब आर्य-कुमारों को प्रयत्न करना चाहिये। महात्मा गांधीजी ने अपने तथा अपने अनुयायियों के सम्मुख यही स्थितप्रज्ञ पुरुष का आदर्श रखा हुआ है और उनके आश्रम में तथा सर्वत्र प्रार्थना के समय इन्हीं स्थितप्रज्ञ पुरुष की अवस्था का वर्णन करनेवाले भगवद्गीता के द्वितीय अध्याय के श्लोकों का वे पाठ करवाते हैं। कवि कालिदास ने कहा है—

"विकार हेतौ सति विक्रियन्ते, येषां न चेतांसितएव धीराः"

अर्थात् धीर पुरुष वे हैं जिनके चित्त में विकार अथवा घबराहट आदि के कारण उपस्थित होने पर भी कभी विकार उत्पन्न नहीं होता। भावार्थ यह कि भयङ्कर विपत्तियों के आने पर भी न घबराना; किन्तु अपने कर्तव्य का पालन

करते चले जाना—यही धीर पुरुषों का लक्षण है। जो धर्म के पवित्र मार्ग पर जिसे उपनिषत्कार ऋषियों ने "क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत् कवयो वदन्ति" कह कर छुरी की तेज धार पर चलने के साथ उपमा दी है—चलना चाहते हैं, उनके लिए अपने अन्दर धैर्य के गुण को धारण करना अत्यन्त आवश्यक है। इसीलिए धर्म के लक्षणों में इसे सबसे प्रथम स्थान दिया गया है। मङ्गलमय सर्वशक्तिमान् परमात्मा पर पूर्ण विश्वास अत्यावश्यक है। जब वेद भगवान के शब्दों में

'इन्द्रो अङ्ग महद् भयमभीषदपचुच्युवत्
सहि स्थिरो विचर्षणिः'

यह विश्वास मनुष्य के मनमें उत्पन्न हो जाता है कि परमेश्वर बड़े-से-बड़े भय वा आपत्ति को भी क्षण भर में छिन्न-भिन्न कर देनेवाला है। वही स्थिर और सर्वज्ञ है। तभी वह कठिन-से-कठिन आपत्ति के आने पर भी धैर्य-धारण कर सकता है अन्यथा नहीं।

भर्तृहरि कवि ने धीर का लक्षण इस प्रकार किया है:—

"निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वास्तुवन्तु।
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतुवायथेष्टम्॥
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरेवा।
न्यायात्पथः प्रविचलन्ति पद न धीराः॥"

अर्थात् नीति-निपुण लोग चाहे स्तुति करें, चाहे निन्दा करें, धन आये या जाये, आज ही मृत्यु हो जाये अथवा अनेक वर्षों के बाद हो, धीर पुरुष न्याय-युक्त मार्ग से एक कदम भी विचलित नहीं होते। आर्य्य-कुमारों को यह आदर्श अपने सामने रखते हुए ऐसा ही धीर बनने का यत्न करना चाहिये। सच्चा आर्य्य-कुमार वह है, जो सदा न्याय के मार्ग पर चलता है, जिसका चित्त सदा—भयङ्कर-से-भयङ्कर आपत्तियों के आने पर भी—शान्त रहता है, और जो कर्त्तव्य-कर्म का निरन्तर पालन करता है। कुमारों को ऐसा ही आर्य्य-कुमार बनने का अवश्य प्रयत्न करना चाहिये।

धैर्य्य-शब्द का दूसरा अर्थ साहस अथवा निर्भयता है। इसके बिना कोई धर्म का कार्य नहीं किया जा सकता। धार्मिक, सामाजिक तथा राजनीतिक किसी प्रकार के भी सुधार के लिए इस प्रकार का धैर्य्य अथवा साहस अत्यावश्यक है। समाज-सुधार के विरोधियों की ओर से सुधारकों का सब प्रकार से विरोध किया जाता है, उन्हें अनेक प्रकार से सताया जाता है; कभी-कभी जाति-बहिष्कृत तक कर दिया जाता है। इन सब कष्टों को सहर्ष सहन करने के लिए बड़े धैर्य्य की आवश्यकता है। बाल-विवाह, जन्म-सिद्ध जाति-भेद वा ज़ात-पात, अछूतपन इत्यादि

बुरे सामाजिक रीति-रिवाजों के ग़ुलाम न बनकर उन्हें तोड़ने के लिए धैर्य्य वा साहस आवश्यक है, जिसे आर्य्य-युवकों को अपने अन्दर पूर्णरूप से धारण करना चाहिये। भगवद्‌गीता में श्रीकृष्ण महाराज ने इस अभय वा निर्भयता को 'दैवी-सम्पत्' में प्रथम स्थान दिया है—

"अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोग व्यवस्थितिः" इत्यादि।

वेदों में इस निर्भयता के लिए बार-बार प्रार्थना तथा उपदेश हैं। शान्ति-प्रकरण के मन्त्रों में हम सब आर्य्य सदा प्रार्थना करते हैं:—

"अभयं पश्चादभयं पुरस्तादुत्तरादधरादभयं नो अस्तु॥"

"अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं पुरोयः।
अभयं नक्तमभयं दिवानः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु॥"

अर्थात् पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण, सब दिशाओं में हम निर्भय रहें। मित्रों से, शत्रुओं से, परिचितों से, जो सम्मुख हों उनसे, रात-दिन सदा-सर्वत्र सब से हमें निर्भयता प्राप्त हो और सब दिशाओं के वासी सब प्राणी हमारे मित्र बनें। मित्रों और परिचितों से निर्भयता की, जो प्रार्थना इन मन्त्रों में की गई है, वह अत्यन्त महत्त्व-पूर्ण है। यह प्रायः देखा जाता है कि प्रचलित-रीति-रिवाजों की दासता को तिलाञ्जलि देकर समाज-सुधार—कल्पित जात-पात तोड़कर गुणकर्मानुसार विवाह इत्यादि

कार्य की इच्छा रखने वाले अनेक युवक केवल मित्रों, बन्धुओं अथवा बिरादरी आदि के भय से अथवा उनकी नाराज़गी के डर से ऐसा करने का साहस नहीं करते। आर्य्य-युवकों को अपने अन्दर ऐसी निर्भयता, धैर्य अथवा साहस साधारण करके जात-पात के ढकोसलों को तोड़कर गुण-कर्मानुसार योग्य विवाहादि करने तथा अन्य समाज-सुधार के कार्यों में अग्रणी होना चाहिये। सर्वशक्तिमान् परमात्मा पर तथा आत्मा की अमरता पर पूर्ण विश्वास हमें ऐसा निर्भय बना सकता है। इस प्रकार धैर्य्य-सम्पन्न आर्य्य-कुमारों और आर्य कुमारियों तथा युवक-युवतियों की संख्या समाज और राष्ट्र में जितनी अधिक होगी उतनी ही शीघ्र समाज और राष्ट्र का उद्धार होगा, इसमें सन्देह नहीं हो सकता।

तप और त्याग

आर्यसमाज की आधार शिला तप और त्याग पर रखी है, सेवा का सच्चा आदर्श ही उसका लक्ष्य है। आज तप और त्याग की कमी से अथवा निःस्वार्थ सेवा की उपेक्षा से आर्यसमाज की जो शोचनीय दशा हो रही है, मैं चाहता हूँ कि आपका सच्चा धर्म-प्रेम उसका अन्त करदे। सेवा के सुरम्य उपवन में शासन की उग्र आग लगी हुई है। आर्यकुमारो! तुम उससे अलग रहना और उसकी ओर देखना भी नहीं।

—मदनमोहन सेठ, एम० ए० एल-एल० बी०

आबूबन और स्वर्गीय दूत

मियाँ अबूबन हृदय के बड़े ही सच्चे थे। वह सब को समान दृष्टि से देखते थे। एक दिन की बात है, वह रात को सोये थे। आधी रात को जब आँखें खुलीं तब उन्होंने देखा कि सारे घर में उजाला हो रहा है और उस उजाले में प्रफुल्ल कमल-सा एक अत्यन्त सुन्दर देवदूत सुनहरी पुस्तक में कुछ लिख रहा है। आबूबन तो निष्पाप थे। उन्हें ऐसा आश्चर्य्य पूर्ण दृश्य देखकर ज़रा भी डर न हुआ। उन्होंने निर्भय हो कर पूछा, "आप इस पुस्तक में क्या लिख रहे हैं?"

उस देवदूत ने धीरे से उनके कानों में कहा "संसार में जो लोग ईश्वर को हृदय से प्यार करते हैं, मैं उन्हीं लोगों के नाम इस बही में लिखता हूँ।"

आबूबन ने कोमल स्वर में कहा "क्या मेरा नाम भी लिखा है ?" देवदूत ने हँसकर कहा, "नहीं ।"

तब आबूबन ने विनय पूर्वक कहा—'नहीं लिखा है तो इतना लिखलो, आबूबन सब मनुष्यों को अपना भा ही जानकर प्यार करता है ।" यह सुनकर देवदूत अलक्षित हो गया । हाय, आबूबन का नाम इस पुस्तक में न लिखा गया ! दूसरी रात वह देवदूत फिर आबूबन के पास अपना तेज प्रकाश करता हुआ आ-पहुँचा । उसने वही सुनहरी बही आबूबन की नजर के सामने रख दी । आबूबन ने देखा, जितने महात्माओं के नाम उस बही में लिखे थे उनमें सबके पहले आबूबन का ही नाम लिखा था । वह देखकर आबूबन के आनन्द की सीमा न रही !!

क्या तुम लोग आबूबन के इस पवित्र चरित्र से कुछ शिक्षा लाभ न करोगे मनुष्य मात्र को हृदय से प्यार करना सीखो । जो व्यक्ति सब मनुष्यों को प्यार करता है, वह ईश्वर का प्यारा होता है !!

ईश्वर-भक्ति

वर्त्तमान युग के नवयुवक तीव्रता से नास्तिकवाद की बाढ़ में बहे जा रहे हैं। स्वतन्त्रता-प्रियता के साथ-ही-साथ नास्तिकता भी अपना क़दम बढ़ाये चली आती है। ऐसा प्रतीत होता है मानों सांसारिक मुकुट-धारियों के साथ-ही-साथ लोग ईश्वरीय सिंहासन को भी निर्मूल कर देना चाहते हैं। जिन योरुपीय देशों में क्रान्तियां हुई हैं, तथा जिनमें साम्यवादी राज्य स्थापित हुए हैं उन्होंने अपने उदाहरणों से इस भावना को अधिक जागृत किया है। भारतीय नवयुवक भी इस लहर के प्रभाव से बरी नहीं। आज भारतीय नवयुवक का जीवन एक अन्धकार-मय व्यस्तता से परिपूर्ण है। वह जीता है, परन्तु जीवन का उद्देश्य कुछ नही। वह एक मशीन के समान कार्य व्यस्त

[illegible] हंसराज (प्रयाग सम्मेलन के सभापति)

पं० रामचन्द्र 'देहलवी' (दिल्ली सम्मेलन के सभापति)

रहता है; परन्तु उसके जीवन में चिन्तन-हीनता एवं नीरसता का समावेश हुआ जाता है। उसमें सहन-शीलता एवं धैर्य का लवलेश नहीं। ज़रा-सा कष्ट-मय तूफ़ान उठा कि वह अपना आपा छोड़ बैठा। उसको कोई सहारा नहीं सूझता। यह परिस्थिति क्यों? इसका अनुशीलन किया जाय तो ज्ञात होगा कि इस दब्बू-पन, इस हार्दिक निर्बलता का कारण अधिकतर नास्तिकता ही है।

घोर संकट में, जब मार्ग नहीं सूझता, हृदय का पोत डावाँडोल होने लगता है, उस समय दुखी हृदय में से निकली दीन प्रार्थना कोई फल लाती हो या नहीं, इतना तो अवश्य होता है कि डगमगाता हृदय किसी दैवी शक्ति से संयुक्त होजाता है, तथा बैठा जाता हुआ हृदय थम जाता है।

तर्क एवं साइंस ईश्वर को सिद्ध कर सकें अथवा नहीं, इतना अवश्य कहना पड़ेगा कि संकट में भगवान् का चिन्तन भगवान् का आवाहन करके की हुई प्रार्थना अवश्य फलवती होती है। मुझे तो ऐसा प्रतीत है कि नास्तिकता के विषमय विचार के हृदय में समावेश करते ही जीवन अन्धकारमय नीरसता से परिपूर्ण हो जाता है। अमेरिकन कवि ऐलावीलर विलकाक्स ने क्या ही अच्छा कहा है।

"I do not undertake to say,
That literal answers come from Heaven,
But I know this—that when I pray,
A comfort, a support is given,
That helps me rise O'er earthly things,
As larks soar up on airy wings."

आज खोखले नवयुवक, आज़ाद ख़याली की ओट लेकर, धर्महीनता एवं नास्तिकता को अपनाकर, जिस नैतिक पतन की ओर अग्रसर हो रहे हैं, उसके परिणाम कितने विषैले हैं, यह जगत-विदित है।

यह ठीक है कि साम्प्रदायिक धर्मवाद त्याज्य है; परन्तु संसार का जो बड़ा धर्म है, नीति एवं सदाचार, इसका आधार-रूप आस्तिकवाद ही है। दुनिया से परोक्ष में ही ऐसे कार्य होते हैं, जिनको पापमय कहा जाता है। वही पुरुष सच्चरित्र एवं धार्मिक है, जो लोगों के नेत्रों से ओझल भी कुकर्म करने में प्रवृत्त नहीं होता, परन्तु वह कौन-सा विचार है, जो मनुष्य को असद्-कार्यों से दूर किये रहता है? वह है—आस्तिकवाद, प्रार्थना-मय-जीवन!

आर्य्यकुमारों के सम्मुख आस्तिकवाद एक ज्योति-स्तम्भ के समान चमत्कृत रहना चाहिये। वह ढोंगी न बनें—हार्दिक प्रार्थना करें। उनका जीवन प्रार्थनामय जीवन

हो। उनके नेत्रों में प्रार्थना की शान्त झलक हो, उनके चेहरों पर प्रार्थना की तेजस्विता हो। वे बेशक घण्टों सन्ध्या न करें, एवं लम्बी-लम्बी प्रार्थनाओं का नाटक न खेलें; परन्तु उनका क्षण-क्षण आस्तिकता की लहरों में व्यतीत हो। उनके विचारों से, वाणी से, कर्मों से आस्तिकता टपकती हो। उनका गीत, उनका ध्येय हो—आस्तिकता! तभी संसार के इस कँटीले मार्ग के वे सफल यात्री हो सकेंगे !!

Be Gentleman.

Come wealth or want, come good or ill,
Let young and old accept their part.
And bow before the Awful will,
And bear it with an honest heart;
Who misses or who wins the prize,
Go loose or conquer as you can,
But if you fail or if you rise.
Be each pray God a Gentleman.

तेरे भावें जो करे भलो बुरो संसार।
नारायण तू बैठकर अपनो भवन बुहार॥

कुछ पुरानी बातें

(परिषद् के भूतपूर्व मन्त्री श्री० कुँवर चाँदकरण जी शारदा बी० ए० एल-एल० बी० अजमेर की लेखिनी से)

मुझे वह दिन खूब याद है, जब सन १६०६ में भाई सुधाकर जी के निमन्त्रण-पत्र रावलपिण्डी से भारतवर्षीय आर्य्य-कुमार परिषद् को स्थापित करने के लिए हमारे पास आये थे, और हमने अजमेर में आर्य्य-विद्यार्थी-सभा स्थापित कर उसका सम्बन्ध भारतवर्षीय आर्य्य-कुमार परिषद् से आगामी वर्ष में कराया था।

जब मैं सन् १६११ में आगरा-कॉलिज में पढ़ता था, तबसे मैंने आर्य्य-युवकों में आर्य्य-मित्र सभा द्वारा वैदिक-धर्म के प्रचार का मुख्य साधन बनाया था और मेरे प्यारे भाई श्रीमान् बाबू अलखमुरारी जी, बी० ए०, एल-एल० बी० के साथ भारतवर्षीय आर्य्य-कुमार परिषद् की बहुत सेवा की थी और आर्य्य-कुमार हमारे काम से इतने प्रसन्न थे कि सहारनपुर से भारतवर्षीय आर्य्य-कुमार परिषद् का

दफ़्तर अजमेर ही आगया और भारतवर्षीय आर्य्य-कुमार परिषद् की रजिस्ट्री एक्ट २१ सन् १८६० के अनुसार ५०), जमा कराकर अजमेर नगर में करायी गयी, और पञ्चम आर्य्य-कुमार-सम्मेलन अजमेर नगर में संवत् १९७१ में कराया गया और उसी समय से आर्य्य-सेवा-समितियों की स्थापना तथा आर्य्य-टूर्नामेंट आदि करके तथा वाद-विवाद आदि में चाँदी के प्याले इनाम में देकर तथा सत्यार्थप्रकाश-परीक्षा आदि का आयोजन करके नवयुवकों में आर्य्यसमाज के प्रति श्रद्धा और भक्ति उत्पन्न की गयी थी। सन् १९१८ तक मैं बराबर प्रत्येक आर्य्य-कुमार-सम्मेलन में उपस्थित होता रहा और मन्त्री, उपमन्त्री या अन्तरङ्ग सदस्य के रूप में बराबर काम करता रहा। मुझे १८ अक्टूबर सन् १९१२ का वह दिन भली प्रकार याद है, जबकि श्रीमान् देशभक्त लाला लाजपतराय-जी के सभापतित्व में हमने तृतीय भारतवर्षीय आर्य्य-कुमार-सम्मेलन सहारनपुर में किया था और उसमें सबसे पहिली बार गुरुकुल काँगड़ी के सर्वप्रथम स्नातक भाई इन्द्र जी तथा हरिश्चन्द्र जी विद्यालङ्कार सम्मिलित हुए थे और कॉलेज और गुरुकुल के आर्य्य-युवकों ने कन्धे-से-कन्धा मिलाकर परम पवित्र वैदिक-धर्म के मिशन को संसार भर में फैलाने का व्रत लिया था।

प्रथम भारतवर्षीय आर्य्य-कुमार-सम्मेलन, रावलपिंडी के सभापति श्री, डाक्टर केशवदेव जी शास्त्री एम० डी० से आर्य्य-युवकों ने उत्साह और पीड़ित नर-नारियों की सेवा का भाव लिया था। द्वितीय आर्य्य-कुमार-सम्मेलन के सभापति श्रीमान् अलखमुरारी जी के भाषण से आर्य्य-कुमारों ने जाति-पाति के बन्धनों को तुरन्त ढीला करने का व्रत लिया था। तृतीय आर्य्य-कुमार सम्मेलन के सभापति श्रीमान् लाला लाजपतरायजी के भाषण से आर्य्य-युवकों ने देशभक्ति का व्रत लिया था। चतुर्थ आर्य्य-कुमार-सम्मेलन के सभापति महात्मा मुन्शीराम जी के भाषण से, जो उन्होंने सन् १६१३ में देहली में दिया था, आर्य्य-युवकों में आत्म-विश्वास उत्पन्न हुआ था, और आर्य्य-युवक यह समझने लगे थे कि देश, जाति और समाज की उन्नति आर्य्य-कुमारों पर ही निर्भर है। पञ्चम भारतवर्षीय आर्य्य-कुमार सम्मेलन अजमेर के सभापति श्रीमान प्रो० रामदेव जी के वाक्य—"प्रिय आर्य्य-कुमारो ! मैं चाहता हूँ कि आप लोग जी-जान से कोशिश करें और वैदिक-धर्म को संसार भर में फैलावें और सेंटपाल के गिरजेपर ओ३म् का झण्डा लहरावें; बर्लिन के बाजारों में वेद में मन्त्रों का गान हो, मक्के की मस्जिद में संसार को प्रकाशित करनेवाला हवन हो"

अभी तक मेरे कानों में गूँज रहे हैं और इन शब्दों से परम पवित्र वैदिक-धर्म को फैलाने की स्फूर्ति मेरे हृदय में आती रहती है।

छठे आर्यकुमार-सम्मेलन, अमृतसर के सभापति श्रीमान् पूज्यपाद स्वा० सत्यानन्द जी महाराज के उपदेश से आर्य-कुमार धर्मस्नेह के अटूट तार में बँध गये, और आर्यों की प्राचीन श्रेष्ठ सभ्यता और धर्म-ग्रन्थों में उत्साह, साहस व कार्य-परायणता का पाठ पढ़ने लगे। सातवें भारतवर्षीय आर्यकुमार सम्मेलन, लखनऊ के सभापति श्री प्रो० बाल-कृष्णजी ने भारतमाता की दुःखभरी गाथा सुनाई, और स्वर्गीय आर्यभूमि के गुणगान करते हुए यह बतलाया कि निराशा, भीरुता, उदासीनता, उपरामता का जीवन अवैदिक है। आर्यसमाज आपके आत्माओं का अवश्य पालनपोषण करके आपको आर्यवर्त्त के सच्चे आर्य-पुत्र बना देगा। अष्टम आर्यकुमार-सम्मेलन, प्रयाग के सभा-पति महात्मा हंसराजजी ने महर्षि दयानन्द के त्याग और तप का वर्णन करते हुए आर्यकुमारों को इस्लाम, और ईसायत के ख़तरे से सचेत किया और ग़ैर-मज़हबों के साथ आर्यसमाज के मुकाबिले की प्रशंसा की और दलितोद्धार, शुद्धि, संगठन की ओर आर्यकुमारों का ध्यान आकर्षित किया। इसके पश्चात् के सम्मेलनों में पूज्यपाद

श्री स्वामी श्रद्धानन्दजी महाराज तथा आर्य-फ़िलासफ़र, राज्यरत्न, राजमित्र, स्वर्गवासी मास्टर आत्माराम जी, बड़ौदा के विचारपूर्ण भाषण आज भी हमारी नस में नवीन रुधिर का प्रवाह कर रहे हैं, और यह वह महान् ज्योति-स्तम्भ हैं, जिनसे हमारे में परमात्मा के अमृत-पुत्र होने का भाव उत्पन्न होकर हमारे सामने अपरिमित शक्तियों का भण्डार खुल जाता है। मैं अजमेर में दयानन्द-निर्वाण अर्द्ध शताब्दी के शुभ-अवसर पर श्रीमान् आत्माराम जी के सभापतित्व में आर्यकुमारों और आर्य-युवकों, आर्य-विद्यार्थियों, आर्य-कुमारियों और गुरुकुलों की ब्रह्मचारिणियों के अपूर्व साहस, श्रद्धा और बल को देखकर चकित होगया और मुझे विश्वास होगया कि गत २५ वर्षों में भारतवर्षीय आर्यकुमार परिषद् ने नवयुवकों में अभूतपूर्व जागृति उत्पन्न की है। श्रीमान् आनन्दप्रिय जी तथा डाक्टर युद्धवीरसिंह जी का तप हम में बल ला रहा है। परमपिता परमात्मा से प्रार्थना है कि भारतवर्षीय आर्यकुमार परिषद् की उत्तरोत्तर उन्नति हो !!

परिषद् के संस्थापक—

भिषगाचार्य डा॰ केशवदेव जी शास्त्री, एम. ए.

सभापति प्रथम तथा नवम सम्मेलन रावलपिण्डी तथा काशी

स्वर्गवास सन् १९२८

परिषद् का संक्षिप्त इतिहास

बीसवीं शताब्दि के प्रारम्भ में आर्य-समाज जीवित, जागृति और शक्तिशाली समाज बन रहा था। उसके अभ्युदय, अभ्युत्थान की धाक सारे भारतवर्ष में बैठ चुकी थी। आर्यसमाज दृढ़ संगठन के साथ सारे भारतवर्ष में प्रचार-कार्य करने का प्रयत्न कर रहा था। उसी अवसर पर आर्यसमाज के जगमगाते रत्न आर्यकुमार भी क्रियाशील युवकों के समान अपना संगठन करने के लिए उत्सुक होरहे थे। पंजाब में आर्यसमाज का कार्य काफ़ी संगठित रूप में चल रहा था। इसका कारण भी था, आर्यसमाज की बलिवेदी पर पंजाब प्रान्त की कई महान् आत्माओं ने काफ़ी बलिदान कर दिखाया था। उन दिनों रावलपिण्डी, पंजाब-प्रान्त की आर्यकुमार सभा जीवित जागृत सभा

बनी हुई थी। सन् १९०९ तदनुसार संवत् १९६६ वि० में रावलपिण्डी के उत्साही आर्यवीरों के हृदय में क्रिश्चियन नवयुवकों के संगठन के समान आर्यकुमारों का संगठन करने का विचार उत्पन्न हुआ। प्रो० सुधाकर जी, एम० ए० वर्त्तमान मन्त्री सार्वदेशिक सभा, श्रीयुत बलभद्र जी, प्रो० सिद्धेश्वर जी, एम० ए० ने आर्यकुमारों के संगठन करने का निश्चय किया। प्रो० सुधाकर जी ने वाई० एम० सी० ए० के संगठन का अध्ययन करके कुछ विचार निश्चित किये और वे सब स्वर्गीय डा० केशवदेवजी शास्त्री के पास बनारस भेज दिये। स्वर्गीय शास्त्री जी उन दिनों बनारस में वैद्यक करते थे तथा 'नवजीवन' पत्र का सम्पादन भी करते थे। उन्होंने प्रो० सुधाकर जी के विचारों का समर्थन किया और आर्यकुमारों को संगठित करने के लिए आर्यकुमार परिषद् की नींव डाली। उन्हीं दिनों प्रो० सुधाकर जी, प्रो० सिद्धेश्वर जी, श्री बलभद्र जी काशी पहुँचे हुए थे। इस प्रकार चारों व्यक्तियों को ही कुमार-परिषद् की स्थापना का श्रेय प्राप्त है, काशी से एक अपील भी प्रकाशित की गयी और यह भी निश्चय किया गया कि रावलपिण्डी में आर्यकुमार-सम्मेलन किया जाय। इस सम्मेलन के सभापति-पद को स्वर्गीय डा० केशवदेव जी शास्त्री ने सुशोभित किया।

स्वर्गीय शास्त्री जी ने अपने भाषण में आर्यकुमारों को दिव्य संदेश देते हुए कहा था—

"सज्जन कुमारो ! उठो और मनुष्य के कल्याण का व्रत धारण करो। मैत्री और कल्याण से मनुष्य मात्र का कल्याण करो। आपकी सच्ची और प्रेमभरी वाणी बड़ी-बड़ी अट्टालिकाओं और दरिद्रियों की कुटी में से अनेक दुखियों को बाहर लायेगी। पीड़ित नर-नारी, युवक और वृद्ध आपके करुणा-भाव को देखकर आपकी शरण में आयेंगे। हमें आशा है कि आप विश्वासपात्र बनकर उनके क्लेशों को कम करने की चेष्टा करेंगे।"

स्वर्गीय शास्त्री जी ने समय-समय पर आर्यकुमार परिषद् को उन्नत करने में जो तन, मन, धन से सहायता दी, उसका उल्लेख करना हमारी शक्ति से बाहर है। आप ने प्रत्येक सङ्कट में हर प्रकार की विघ्न-बाधा पड़ने पर सदा परिषद् का पूर्ण योग्यता से सञ्चालन किया और अपने जीवन में इसे जीवित-जागृत संस्था बनाये रखा।

पहले सम्मेलन के पश्चात् किस प्रकार भिन्न-भिन्न जगहों में सम्मेलन हुए और उसका वृत्तान्त पाठक पिछले लेख में, जो परिषद् के भूतपूर्व मंत्री और प्राण कुँवर चाँदकरण जी शारदा ने स्वयं लिखा है, पढ़ चुके हैं।

पहले श्री अलखमुरारी जी ने परिषद् के महामन्त्री रहते हुए इसका खूब सञ्चालन किया; क्योंकि इस समय डा० केशवदेव जी शास्त्री अमेरिका चले गये थे। फिर कुँवर चाँदकरण जी शारदा इसके मन्त्री बने और उन्होंने कई वर्ष तक मन्त्री पद का कार्य लगन के साथ किया।

इलाहाबाद-सम्मेलन के बाद परिषद् के कार्य में कुछ शिथिलता आ गई थी और अगला सम्मेलन समय पर न हो सका था कि डा० केशवदेव जी शास्त्री अमेरिका से लौट आये और उनके ही सभापतित्व में काशी में नवाँ सम्मेलन हुआ, और वहाँ राय ज्वालाप्रसाद जी की अध्यक्षता में परिषद् का दफ्तर रहा और मन्त्री-कार्य श्रीबृहस्पति जी, वेद शिरोमणि तथा मा० विश्वम्भरदयालजी एम० ए० एल० टी० और फिर प्रो० परमात्माशरण जी एम० ए० ने किया। नीचे हम परिषद् के भिन्न-भिन्न सम्मेलनों की सूची उनके सभापतियों के नामों सहित आपकी जानकारी के लिए दे रहे हैं:—

संख्या	तिथि	स्थान	सभापति
१.	१६-१७ अक्तूबर १९०९	रावलपिंडी	डा० केशवदेव-जी शास्त्री
२.	१९-२० नवम्बर १९११	आगरा	बा० अलखमुरारी जी, एम. ए. एल-एल. बी.
३.	१९-२० अक्तूबर १९१२	सहारनपुर	ला० लाजपतराय जी

संख्या	तिथि	स्थान	सभापति
४.	७-८ अक्तूबर १६१३	दिल्ली	महात्मा मुंशीराम जी
५.	अक्तूबर १६१४	अजमेर	आचार्य रामदेव जी
६.	१३-१५ नवम्बर १६१५	अमृतसर	स्वामी सत्यानन्द जी
७.	१६१६	लखनऊ	प्रिंसिपल बालकृष्ण जी
८.	१४-१६ नवम्बर १६१७	प्रयाग	महात्मा हंसराज जी
६.	दिसम्बर १६१६	काशी	डाक्टर केशवदेव जी
१०.	नवम्बर १६२०	मिर्ज़ापुर	पं० गंगाप्रसाद जी एम० ए०
११.	२६-३१ अक्तूबर १६२१	मेरठ	भाई परमानन्द जी
१२.	७-१० जून १६२३	लाहौर	महात्मा नारायण स्वामी जी
१३.	१२-१३ दिसम्बर १६२४	दिल्ली	मा० आत्माराम जी
१४.	१०-१२ ,, १६२५	बड़ौदा	सेठ गोविन्द-लाल जी पित्ती
१५.	२३-२६ दिसम्बर १६२६	पटना	भाई परमानन्द जी
१६.	दिसम्बर १६२७	मुरादाबाद	पं० विष्णु भास्कर-जी केलकर
१७.	२६ दिसम्बर १६२८	भरतपुर	पं० इन्द्रजी विद्या-वाचस्पति
१८.	जनवरी १६३०	आगरा	श्रीमान् राजा अवधेश-नारायणसिंह जी कालाकाँकर नरेश
१६.	१६३१	लखनऊ	लाला देशबन्धु जी गुप्ता

संख्या	तिथि	स्थान	सभापति
२०.	२६ अक्तूबर १६३२	बलरामपुर	पं० विश्वबन्धु जी
२१.	४ अक्तूबर १६३४	मेरठ	रायसाहब मदन-मोहन जी सेठ
२२.	६-७ फरवरी १६३७	दिल्ली	पं० रामचन्द्र जी देहलवी

इनके अतिरिक्त चार विशेष सम्मेलन निम्न प्रकार हुए—

१.	फ़रवरी १६२५	मथुरा	महाराजाधिराज सर नाहरसिंह जी शाहपुराधीश
२.	७-६ फ़रवरी १६३२	बरेली	पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय
३.	नवम्बर १६३३	अजमेर	राज्यरत्न मास्टर आत्मारामजी अमृतसरी
४.	२५ दिसम्बर १६३७	मेरठ	पं० बुद्धदेव जी

परिषद् का कार्यालय पहले लगभग ६ वर्ष तक सहारनपुर श्री०अलखमुरारी जी के अधीन रहा। फिर अजमेर में श्री० कु० चाँदकरण जी शारदा के पास लगभग ४-५ वर्ष रहा, फिर श्री. राजा ज्वालाप्रसादजी की देखरेख में काशी सन् २१ तक रहा। मेरठ-सम्मेलन के पश्चात् कार्यालय दिल्ली आया और डाक्टर युद्धवीरसिंह जी इसके मन्त्री हुए। डाक्टर केशवदेव जी शास्त्री की देखरेख में इन दिनों परिषद् का खूब काम हुआ।

बड़ौदा-सम्मेलन के कुछ दिन बाद परिषद् का दफ्तर देहरादून ने श्री कृष्णलाल जी के मन्त्रित्व में रहा, परन्तु मुरादाबाद के सम्मेलन के बाद फिर दिल्ली आ गया और आगरा सम्मेलन तक यहीं रहा। आगरा-सम्मेलन पर कु० रतनसिंह जी के मन्त्री चुने जाने पर भी आगरे ही रहा। आगरे के बाद श्री० विद्याधर जी के मन्त्री-पद ग्रहण करने पर २-३ साल तक कार्यालय कानपुर रहा, फिर मेरठ-सम्मेलन के बाद साल-डेढ़ साल तक कार्यालय मेरठ श्री विश्वम्भरसाहय जी प्रेमी के मन्त्रित्व में रहा। दिल्ली-सम्मेलन के बाद अब दफ्तर श्री मनुराम मन्त्री-परिषद् के अधीन दिल्ली में है। सार्वदेशिक सभा के बलिदान भवन में दफ्तर के लिए जगह मिली हुई है।

स्वर्गीय डा० केशवदेवजी शास्त्री ने इस बातपर अधिक बल दिया कि परिषद् का स्थायी भवन बनाया जाय। लाहौर सम्मेलन में उन्हीं के द्वारा एक प्रस्ताव रक्खा गया, जिसका आशय था कि आर्यकुमार-सभाओं के संगठनरूप भारतवर्षीय आर्यकुमार परिषद् को स्थिर करनेके लिए तथा इस संगठन का यथार्थ उद्देश्य पूर्ण करने के लिए यह आवश्यक है कि दिल्ली नगर में आर्यकुमार-परिषद् का स्थायी "आर्य-कुमार भवन" निर्माण किया जाय। इसके लिए जनता से २५ हजार रुपये की अपील भी की जाय। मथुरा के

जन्मशताब्दी-उत्सव तक यह धन एकत्रित किया जाय और उसकी आधार-शिला रखी जाय।

यद्यपि यह प्रस्ताव कार्य-रूप में परिणत न हो पाया, तथापि इसमें संदेह नहीं कि स्वर्गीय शास्त्री जी ने कई वर्ष तक प्रयत्न किया कि धन-संग्रह किया जाय। डा० युद्धवीर सिंह जी के मथुरा जन्मशताब्दी के काम में लग जाने तथा स्वर्गीय शास्त्री जी को भी अवकाश न मिलने के कारण यह महत्वपूर्ण निश्चय बीच ही में रह गया। स्थायी भवन न होने के कारण सन् १६२८ से सन १६३२ तक का समय ऐसा आया जब कि पिछला संगठित कार्य भी नष्ट-भ्रष्ट-सा होगया। परिषद् का एकत्रित किया हुआ सामान भी न जाने कहाँ-कहाँ रद्दी में पड़कर समाप्त हो गया।

मेरठ कुमार-सम्मेलन के अवसर पर वैदिक धर्म-विशारद परीक्षाओं का भी विधान बनाया गया। इससे पहले संध्या की परीक्षाएँ या सत्यार्थ-प्रकाश के दो खंडों में परीक्षाएँ हुआ करती थीं। स्वर्गीय बाबू घासीरामजी एम० ए० को परीक्षाओं का विधान बनाने का भार सौंपा गया। मुझे उनकी सहायता के लिए आवश्यक सामग्री जुटाने की सेवा सौंपी गई। स्वर्गीय बाबू जी ने 'वैदक धर्म विशारद' परीक्षाओं का कोर्स तीन खंडों में ऐसे ढंग से बनाया जिसके पढ़ने से आर्यकुमारों को अपने मुख्य-

मुख्य धार्मिक ग्रन्थों का साधारण-सा-ज्ञान भले प्रकार हो सकता है। परीक्षाओं की काफ़ी उन्नति हुई। हज़ारों विद्यार्थी इनमें सम्मिलित हो चुके हैं, और उस समय से बराबर यह कार्य चल रहा है। इन परीक्षाओं को संगठित करने में मा० चरणदास जी मित्तल, मुज़फ्फरनगर तथा प्रो० मुन्शीराम जी एम० ए० कानपुर का विशेष सहयोग प्राप्त हुआ है।

अब इन परीक्षाओं का विस्तार और भी बढ़ गया है। लग-भग १२०० परीक्षार्थी इनमें प्रति वर्ष बैठते हैं। इनका नया कोर्स भी बहुत उत्तम तैयार हुआ है और इनके वर्तमान संयोजक श्री पं० सूर्यदेवजी शर्मा एम. ए. एल. टी. हैडमास्टर डा. ए. वी. हाई स्कूल, अजमेर इनका संचालन बड़ी योग्यता से कर रहे हैं। आगे इन परीक्षाओं का कोर्स इत्यादि दिया गया है।

आर्यकुमार-पत्र

श्री डा० युद्धवीरसिंह जी धुन के पक्के, कर्मण्य, वीर योद्धा और उत्साही युवक के रूप में परिषद् को उन्नत करने की विशेष चिन्ता में लगे रहे। आपने सितम्बर १९२३ में 'आर्यकुमार' पत्र मासिक रूप में निकालने का

शुभ संकल्प किया। स्वर्गीय डा० केशवदेव जी शास्त्री इसके सम्पादक नियत किये गये। डा० युद्धवीरसिंह जी को सब कुछ करना पड़ता था। इस प्रकार सम्मेलन के भूतपूर्व प्रधान स्वर्गीय लाला लाजपतराय जी के उस आदेश की पूर्ति की गई, जिसमें उन्होंने परिषद् का पत्र होने की आवश्यकता प्रकट की थी और अपना आशीर्वाद देते हुए लिखा था—"मेरी सेहत इस बात की आज्ञा नहीं देती कि मैं आपके लिए कुछ लिखूँ। मेरी यह इच्छा है कि आपका पुरुषार्थ प्रत्येक प्रकार से सफल हो।"

'आर्यकुमार' पत्र इससे पूर्व द्विमासिक रूप में लखनऊ से निकला था, परन्तु दो-तीन अङ्क ही निकल कर रह गया। फिर श्री मथुराप्रासद जी शिवहरे वर्तमान अध्यक्ष आर्य साहित्य-मण्डल, अजमेर ने इसे फतेहपुर से साप्ताहिक रूप में कई मास तक बड़ी शान से निकला मगर वह कुछ मास बाद बन्द होगया। दिल्ली से 'आर्यकुमार' पत्र कलकत्ते चला गया था और वहाँ पर श्री विश्वम्भरप्रसाद जी शर्मा ने इसे बड़ी शान के साथ साल-डेढ़ साल तक निकाला। बीच में कुछ बन्द होकर फिर दिल्ली से यह पत्र निकलता रहा और जब परिषद् का दफ़्तर दिल्लीसे चलागया,तो पत्र बन्द होगया, मगर फिर कानपुर से कुछ मास निकला और बन्द होगया।

आर्यकुमार-डायरी

प्रथम बार १६२२-२३ ई० की आर्य्य-कुमार डायरी का सम्पादन व प्रकाशन भी किया गया। डायरी बड़ी शान के साथ वैदिक-यन्त्रालय अजमेर में छपाई गई। मुझे भी इस काम में काफ़ी दिलचस्पी थी और डाक्टर युद्धवीरसिंह जी तो इसके प्रकाशन में विशेष रूप से लगे हुए थे। वस्तुतः छपाई का अनुभव दोनों को ही न था। परिणाम यह हुआ कि डायरी का मूल्य अधिक पड़ जाने से परिषद् को काफ़ी क्षति उठानी पड़ी। परन्तु डायरी परिषद् के कार्य का एक सुन्दर संग्रह बन गया था। उससे कुमारों को बड़ा लाभ पहुँचा। इसके पश्चात् डायरी का प्रकाशन कई वर्ष तक परिषद् के अधीन चलता रहा और बाद को १६२७ ई० से मुझे इसके प्रकाशन आदि का कार्य सौंपा गया, जिससे परिषद् को कोई आर्थिक क्षति उठानी न पड़े, परन्तु यह काम ऐसा था कि परिषद् स्वयं ही अपने हाथों में रखकर नियमित-रूप से पूरा करती तो विशेष लाभ होता।

प्रान्तीय सङ्गठन

सन् १६२३ में कुछ कुमार-सभाओं की ओर से प्रान्तीय परिषद् का संगठन करने का प्रश्न भी उठाया गया। मैं स्वयं इसके विरुद्ध था। श्री डाक्टर युद्धवीर-सिंह जी को कई बार प्रेरणा की गई कि अभी भारतवर्षीय-

परिषद् का पूरा विस्तार नहीं हो पाया है। यू० पी० प्रान्त की ही अधिकांश कुमार सभाएँ परिषद् से सम्बन्धित हैं, इस कारण प्रान्तीय संगठन न बनाया जाय। उस समय मुरादाबाद कुमार-सभा के कुछ कार्यकर्त्ता प्रान्तीय संगठन के लिए विशेष आग्रह कर रहे थे। अन्त में एक उपसमिति बनाई गई और उसने निश्चय करदिया कि प्रान्तीय संगठन किया जाय। उसके अनुसार कुमार-सभाओं को सुसंगठित करने तथा आर्य्यकुमार-सभाएँ स्थापित करने के लिए तथा वर्त्तमान कुमार-सभाओं को उत्साहित करने व उनका निरीक्षण करने के लिए प्रान्तीय-संगठन बनाये गये।

परन्तु यह संगठन भारतवर्षीय-कुमार-परिषद् के अधीन रखा गया। उसमें स्पष्ट कर दिया गया था कि भारतवर्षीय आर्य्यकुमार-परिषद् की आज्ञाओं व नियमों के अनुसार ही उन्हें कार्य करना होगा। संगठन बन जाने पर यह देखा गया कि केवल युक्त प्रान्त में ही इसकी चर्चा रही। परिषद् को सहायता मिलनी तो दूर रही, किन्तु उसके मुक़ाबले में एक दूसरी ही संस्था बन गई। दो वर्ष बीत जाने पर परिषद् के कार्यकर्ताओं ने इस बात का अनुभव किया कि केवल भारतवर्षीय परिषद् ही को संगठित करने की ओर शक्ति लगाई जाय।

प्रान्तीय सम्मेलन कई स्थानों में उत्साह के साथ किये गये। मुरादाबाद में काफी जोश के साथ किया गया। मेरठ ज़िले की मवाना कुमार-सभा ने भी प्रान्तीय सम्मेलन किया और अब भी कभी-कभी प्रान्तीय सम्मेलन की ध्वनि सुनाई पड़ जाती है। हाँ, प्रान्तीय संगठन उस समय तो उपयोगी सिद्ध हो सकता था, जब भारतवर्षीय-परिषद् यू० पी० के अतिरिक्त अन्य प्रान्तों में भी काफ़ी आर्य्यकुमार सभाएँ स्थापित करने में समर्थ हो जाती और आर्य्यसमाज के नेता तथा आर्य्यसमाजों को चलानेवाले अधिकारीगण आर्य्य-कुमारों के संगठन को प्रोत्साहन देते रहते।

आज भी इस बात की काफ़ी कमी अनुभव की जारही है, फिर बड़े-बड़े नगरों, उपनगरों में भी कुमार-सभाएँ मानों स्थापित ही नहीं हुईं। यदि कहीं स्थापित भी हैं, तो वे शिथिल अवस्था में चल रही हैं। इसमें कुछ आर्य्य-समाज के बन्धुओं को मत-भेद भी है। कुछ महानुभाव समझते हैं कि केवल आर्य्य-समाज ही पर्याप्त है, उसी में युवकों को सम्मिलित होना चाहिये, परन्तु इस बात की ओर कितनी ही बार ज़ोर दिया जा चुका है कि आर्य्य-कुमारों का संगठन अलग होने से आर्य्य-समाज की भर्ती में अधिक सहायता मिलेगी। उनका ट्रेण्ड युवक सदस्यता के लिए मिलेंगे, जो आर्य्यसमाज के काम में उन्नति करने-

वाले सिद्ध होंगे। मेरी आज भी यही सम्मति है कि आर्य्य-विद्वानों, नेताओं को इस बात पर अधिक बल देना चाहिये कि आर्य्यसमाजें अपने युवकों के लिए कुमार-सभाएँ स्थापित कराने में पूरा सहयोग प्रदान करें। उनको सर्वप्रकार की सहायता दें और आगे बढ़ने के लिए प्रोत्साहन करें।

साहित्य प्रकाशन

परिषद् की ओर से समय-समय पर कुछ साहित्य भी प्रकाशित होता रहा है। श्री विश्वम्भरप्रसाद जी शर्मा के कार्यकाल में कई चीजें प्रकाशित हुईं, 'यथा शहीद श्रद्धानन्द संन्यासी' 'आर्यकुमार गीता' 'आर्यकुमार-स्मृति' अँग्रेजी में A Clue to the Understanding of Arya Samaj आदि।

परिषद् का कार्य

हमने संक्षिप्त रूप से कुछ बातें अपनी स्मृति से लिखने का उद्योग किया है। सम्भव है बहुत-सी महत्वपूर्ण बातें और भी रह गई हों; परन्तु परिषद् के काग़ज़ात न मिलने के कारण उनका वर्णन नहीं किया जा सकता। हमारा आशय तो इस निबन्ध से यही प्रकट करना है कि इस महत्वपूर्ण संस्था का जीवन बड़े उतार-चढ़ाव का जीवन रहा है और बार-बार उसे बहुत-सी विघ्न-बाधाओं

का सामना करने पर सुषुप्ति की दशा में पड़े रहना नसीब हुआ। परिषद् की प्रगति सदैव धन की मुहताज रही, और भी कई कठिनाइयाँ उपस्थिति होती रही हैं; मगर फिर भी इस अवस्था में जो भो काम इस परिषद् और इसक' कुमार सभाओं द्वारा हुआ है उसकी नापतोल नहीं का जासकती। कितने युवक हैं, जिन्होंने परिषद् के उत्सवों से उत्साह प्राप्त किया; कितने कुमार हैं, जिनके जीवनों को कुमार-सभाओं ने बनाया और कितनों ने इन वार्षिक सम्मेलनों में ही अपने जीवनों में ज्योति प्राप्त की और सत्पथ के पाथिक बने। कोई लेखा इस काम का तैयार नहीं हो सकता।

इससे लाभान्वित कुमार, जो आज आर्यसमाज में काम कर रहे हैं इसके महत्त्व को जानते हैं। कब-कब किन-किन जीवनों को पलटा है और न जाने कितने नवयुवकों के जीवनों में मंगलमय परिवर्तन परिषद् करने में समर्थ होगी, कौन कह सकता है ? जितना इसका विस्तार फैलेगा, उतना ही यह उपयोगी सिद्ध होगी !!

दो बातें जरूरी हैं

मेरे विचार में इस समय दो बातें अत्यन्त आवश्यक हैं। एक तो परिषद् का स्थायी रूप से कार्यालय बन जाय, इसके लिए परिषद् का निश्चय भी हो चुका था और फिर

उस निश्चय को दोहराया जासकता है। सब से उपयुक्त स्थान दिल्ली हो सकता है। जहाँ सब प्रकार की सुविधाएँ प्राप्त हैं। सार्वदेशिक सभा का केन्द्र होने के कारण, यहाँ आर्य-नेतागण भी समय-समय पर एकत्रित होते रहते हैं, जिनसे पूर्ण सहायता मिल सकती है।

दूसरी बात धन की है। प्रयत्न करके कम-से-कम पच्चीस हज़ार रुपया एकत्रित किया जाय। यदि इतना धन एकत्रित हो जाय तो परिषद् का मंत्री व सहायक मंत्री वैतनिक रूप से रक्खा जा सकता है और स्वर्गीय लाला लाजपत राय जी के शब्दों के अनुसार किसी जीवित जागृत संस्था को चलाने के लिए वैतनिक कर्मचारियों की आवश्यकता भी होती है। वह मंत्री सारी कुमार सभाओं में कम-से-कम एक बार जाकर दौरा करे। उनकी वास्तविक दशा को जाँच कर उन्हें उन्नत करने के साधन निकाले। ऐसे स्थानों में भी जाने का प्रयत्न किया जाय जहाँ सरलता से कुमार सभाएँ स्थापित हो सकती हैं।

इसके साथ-साथ कार्यालय को तो इतना संगठित किया जाय कि एक भी व्यक्ति को यह शिकायत न होने पाये कि हमारे पत्र का उत्तर न मिला या इसको पता ही नहीं कि अ०भा० आर्यकुमार-परिषद् का दफ़्तर कहाँ है और उसमें क्या हो रहा है ? जबतक यह बात ही नहीं होगी, उस समय तक परिषद की प्रगति शिथिल ही रहेगी।

भारतवर्षीय आर्यकुमार परिषद् का उद्देश्य

परिषद् का उद्देश्य कुमारों तथा युवकों को ईश्वर, वैदिक-धर्म और देश के सच्चे और क्रियाशाली उपासक बनाना है।

उद्देश्य पूर्ति के साधन

(१) स्थान-स्थान पर आर्यकुमार सभाओं की स्थापना करना तथा उनकी अभिवृद्धि, उन्नति एवं संगठन में तत्पर रहना।

(२) धार्मिक तथा अन्य उपयोगी ग्रन्थों की परीक्षाएँ नियत करना।

(३) प्रति वर्ष एक भारतवर्षीय आर्य कुमार सम्मेलन करना।

(४) कुमारों में सेवा-भाव उत्पन्न करने के लिए तथा उनको सेवा-कार्य के योग्य बनाने के लिए उचित साधनों का प्रयोग करना।

(५) आर्यकुमार सभाओं को उनकी कार्यप्रणाली के सम्बन्ध में समय-समय पर उचित निर्देश देते रहना।

(६) कुमारों के हितार्थ सामयिक एवं अन्य प्रकार का साहित्य प्रकाशित करना।

(७) आर्यकुमारों को शारीरिक उन्नति में प्रवृत्त करने के लिए (Tournaments) टूर्नामेण्ट, पर्यटन तथा अन्य आवश्यक साधनों को काम में लाना। व्यायाम शालाओं आदि का आयोजन करना।

(८) उत्तम जलवायुवाले स्थानों पर स्वास्थ्य भवन (Sanitoriums) बनाना।

(९) कुमारों को चरित्र-गठन (Character Building), व्यावहारिक सभ्यता (Manners), तथा नियंत्रण (Discipline) की क्रियात्मक शिक्षा देने का प्रबन्ध करना।

वर्त्तमान अधिकारी तथा अन्तरंग सदस्य

प्रधान	पंण्डित रामचन्द्र जी देहलवी
उपप्रधना	डाक्टर युद्धवीरसिंह जी
	प्रोफ़ेसर तोताराम जी

	पण्डित सूर्यदेव जी
	श्रीयुत विश्वम्भरसहाय जी प्रेमी
	,, रामदत्त जी (बुरहानपुर)
मन्त्री	श्रीयुत मनुराम जी
उपमन्त्री	श्रीयुत सदानन्द जी (मेरठ)
	,, ईश्वरदयाल जी (बिजनौर)
	,, जगदीश प्रसाद जी (कानपुर)
कोषाध्यक्ष	लाला देशराज जी (दिल्ली)
पुस्तकाध्यक्ष	श्रीयुत शर्मनलाल जी कानपुर।

अन्तरङ्ग सभासद्

१. श्रीयुत कृष्ण शरण जी (रामपुर)
२. ,, देवीदयाल जी (गाज़ियाबाद)
३. ,, सुघरलाल जी (कानपुर)
४. ,, राधेलाल जी (मेरठ)
५. ,, हरिश्चन्द्र जी (मुरादाबाद)
६. ,, चिरंजीलाल जी (अजमेर)
७. ,, बलदेव जी (बलरामपुर)
८. ,, विनयकुमार जी (बुरहानपुर)
९. ,, बद्रीदत्त जी (दिल्ली)
१०. ,, गंगानन्द जी (सिरसा)
११. ,, माणिकलाल जी (काँठ)

१०. ,, रामचन्द्र जी (बरेली)

१३. ,, रामेश्वरप्रसाद जी (नगीना)

प्रतिष्ठित

१४. श्रीयुत विद्याधर जी

१५. प्रोफ़ेसर रामस्वरूप जी

१६. ,, मुन्शीरामजी

१७. श्रीयुत नन्दकिशोर जी (दिल्ली)

१८. ,, कृष्णचन्द्र जी (दिल्ली)

१६. पण्डित हरिदत्त जी शास्त्री (आगरा)

२०. श्रीयुत् विश्वश्रवा जी (बरेली)

परीक्षा-समिति के सदस्य—

१. पण्डित रामचन्द्र जी (पद के कारण)

२. डाक्टर युद्धवीरसिंह जी

३. आचार्य गोपाल जी

४. प्रोफ़ैसर सुधाकर जी

५. पण्डित सूर्यदेव जी

६ प्रोफ़ैसर मुन्शीराम जी

७. श्रीयुत मनुराम जी (पद के कारण)

आर्य्यकुमार-सभाओं का उद्देश्य

आर्य्य तथा अन्य कुमारों को ईश्वर, वैदिक-धर्म और देश के सच्चे और क्रियाशील उपासक बनाना।

उद्देश्य-पूर्ति के साधन

(१) आर्य्य तथा अन्य कुमारों में वैदिक-धर्म, पवित्र और सादा जीवन तथा उच्च विचारों का प्रचार करना और उनको आर्य्यसमाज की सदस्यता के योग्य बनाना।

(२) उनमें सत्यप्रियता, निर्भीकता तथा निःस्वार्थ सेवा-भाव की ओर प्रवृत्ति बढ़ाना।

(३) उनकी शारीरिक, मानसिक, नैतिक, आत्मिक तथा सामाजिक उन्नति द्वारा उन्हें एक आदर्श नागरिक बनाना।

(४) आर्य्य-कुमारों में सदाचार, ब्रह्मचर्य-प्रणाली और अन्य स्वास्थ्य-सम्बन्धी नियमों का प्रचार करना।

(५) मादक द्रव्यों के सेवन तथा अनावश्यक व्यय से बचाकर भोग-विलास के जीवन का तिरस्कार और सादे जीवन की ओर प्रवृत्ति बढ़ाना।

(६) शारीरिक उन्नति के लिए व्यायाम-शालाएँ खोलना तथा अन्योपयोगी साधन करना।

(७) वादानुवाद, व्याख्यान और निबन्धों-द्वारा तर्कशक्ति, वक्तृताशक्ति तथा विचारशक्ति को बढ़ाना।

(८) कुमारों में धार्मिक-ग्रन्थों के स्वाध्याय का प्रचार तथा विद्या और विज्ञान की वृद्धि के निमित्त पुस्तकालय और वाचनालय आदि खोलना।

(९) सेवा का भाव उत्पन्न करना और स्थान-स्थान पर सेवक-मण्डली स्थापित करना।

(१०) दीन विद्यार्थियों, अनाथों तथा कुमारों की सहायता करना।

(११) आर्य्यभाषा तथा नागरी-लिपि का प्रचार करना।

(१२) आर्य्यसमाज के समस्त कार्यों में योग देना और आर्य्यसामाजिक कार्य तथा संस्थाओं की सेवा करना।

(१३) किसी ऐसे कार्य में सम्मिलित न होना, जिससे आर्य्य-जाति के गौरव का ह्रास होता हो।

भारतवर्ष की आर्यकुमार सभाएँ

आर्यकुमार सभा, दीवान हाल, देहली—यह आर्य-कुमार सभा सन् १६१४ ई० में स्थापित हुई। इसकी स्थापना के संचालन का श्रेय मा० शिवचरन दास, मि० नन्दकिशोर खन्ना तथा मा० जयनारायण को है। वर्त्तमान आर्यकुमार सभा का पुनः निर्माण एक प्रकार से उसी आर्य-कुमार सभा की नींव पर हुआ है। पुनः निर्माण का सौभाग्य श्री० भ्राता वीरदेव जी, श्री० ला० लक्ष्मीचन्द जी आदि सज्जनों को है। श्री० डा० युद्धवीर सिंह जी, श्री० सुरेन्द्रनाथ जी जौहर व ला० देशराज जी चौधरी और महाशय कृष्णचन्द्र जी ने अपने अथक परिश्रम तथा निष्काम प्रेम से इनमें कार्य कर उन्नति अवस्था को प्राप्त कराया जो सज्जनों के सम्मुख है।

सभासद—इस समय कुमार-सभा के १३५ सभासद और २८ सहायक है।

विशेष योजनाएँ—इस कुमार सभा के अधीन एक व्यायामशाला है, जिसके अन्दर आर्यकुमार तथा अन्य बाहर का आर्यपुरुष आकर प्राणायाम, लाठी तथा लेज्यम सीखते हैं। कुमार सभा की ओर से वॉलीबॉल, फुटबॉल तथा क्रिकेट आदि का प्रबन्ध है। कुमार सभा का अपना पुस्तकालय है, जिसमें से कुमार पुस्तकें लेकर स्वाध्याय करते हैं।

इस वर्ष कुमार-सभा के प्रधान डा० इन्द्रसेन, एम० ए० पी-एच० डी० तथा श्री जसवन्त राय जी मन्त्री है।

आर्यकुमार सभा अजमेर—इस आर्यकुमार सभा की स्थापना सन् १९३६ ई० में श्रीमान् पं० सूर्यदेव जी के प्रयत्न से आर्यसमाज भवन, केसरगंज में हुई। कुमार सभा में विशेष कर स्कूल के छात्र ही हैं। सभा राय बहादुर पं० मिट्ठनलाल जी भार्गव, पं० जीयालाल जी तथा पं० सूर्यदेव जी की ही संरक्षकता में कार्य कर रही है।

विशेष योजनाएँ व कार्य—इस कुमार सभा के अधीन एक सेवा-समिति है। जो आर्यसमाज तथा जनता की सेवा करती रहती है। वैदिक धर्म विशारद परीक्षाओं का केन्द्र भी है। इस साल परीक्षा में बैठनेवाले आर्यकुमारों

पं० घासीराम जी एम० ए०
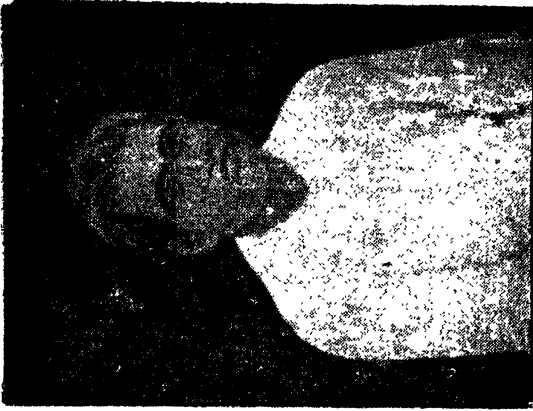
आचार्य रामदेवजी। अजमेर सम्मेलन के सभापति।

तथा अन्य पुरुषों की संख्या १८५ रहीं। श्रीमान् मुन्नीलाल जी ने विशेष रूप से इस कार्य में सहायता दी।

आर्यकुमार सभा के वर्तमान प्रधान पं० सूर्यदेव जी तथा मंत्री श्रीकृष्ण अवतार जी हैं।

आर्यकुमार सभा, पटौदी हाउस, दिल्ली—इस कुमार सभा को स्थापित हुए लगभग ग्यारह साल होगये। तभी से यह सभा अपना कार्य आर्य-अनाथालय पटौदी हाउस की संरक्षता में कर रही है।

सभासद—इस समय आर्यकुमार सभा के १५ सभासद हैं।

विशेष योजनाएँ व कार्य—इस कुमार सभा ने समय-समय पर व्यायामशाला, पुस्तकालय चलाने का प्रबन्ध किया। पर धनाभाव के कारण इन्हें अधिक दिन न चला सके।

इस समय कुमार सभा के प्रधान पं० विश्वनाथ जी शुक्ल तथा मंत्री श्री० भैरवदत्त जी हैं।

आर्यकुमार सभा, पटना सिटी—यह आर्यकुमार सभा आजसे लगभग ८ वर्ष पूर्व सन् १९२८ ई०में स्थापित हुई। ३ वर्षों तक कुमार सभा स्व० बा० जनकधारी गुप्त को देखरेख में कार्य करती रही। दो साल लग्न तथा रुचि से काम करने के बाद सन् १९३० में काँग्रेस में भाग लेने

के कारण बन्द होगई और निजी सम्पत्ति आर्यसमाज को देदी। दुबारा फिर १९३४ में पं० रामचन्द्र के विशेष प्रयत्न से इसका पुनर्जन्म हुआ।

सभासद—वर्त्तमान आर्य्यकुमार-सभा के २२ सभासद हैं। इस समय कुमार सभा के प्रधान श्रीयुत ठाकुर यशपाल जी तथा मन्त्रीजगदीशप्रसाद जी 'शेर' हैं।

आर्यकुमार-सभा भूडबरेली–इस सभा की स्थापना १४ मई सन १९२४ ई० को हुई।

विशेष योजना—इस कुमार-सभा के अन्तर्गत एक आर्य्य-वीरदल है, जो निष्काम-भाव से आर्य्य जगत् की सेवा करता है।

सभासद—इसके सभासदों की संख्या ६ है। इस कुमार-सभा के मन्त्री शमशेरसिंह जी हैं।

आर्यकुमार-सभा सिमडोला (राँची)—इस आर्य्य-कुमार सभा को स्थापित हुए अभी थोड़ा ही समय हुआ है। इसका कार्य सुचारु-रूप से चल रहा है।

विशेष कार्य व योजनाएँ—इस कुमार सभा के अन्तर्गत एक व्यायामशाला तथा आर्य्यवीर-दल है जहाँ आर्य्य-कुमार शारीरिक शरीर करने के साथ-साथ आर्य्यवीर-दल-द्वारा समाज-सेवा का कार्य्य भी करते हैं। कुमार-सभा

के लिए एक पुस्तकालय की आवश्यकता है। दानी सज्जनों से प्रार्थना है कि वे धन से उनकी सहायता करें।

सभासद—कुमार-सभा के सभासदों की संख्या २० है। सभा के प्रधान श्रीयुत कृष्णगोविन्द आर्य हैं तथा मन्त्री विजयकृष्णजी है।

विशेष कार्य—आर्य्य-कुमार-सभा की ओर से ग्राम-प्रचार का काम किया जा रहा है। ४ पाठशालाएँ आर्य्य-कुमार-सभा की ओर से चल रही है, जिनमें विद्यार्थियों को निःशुल्क शिक्षा दी जाती है। कुमार-सभा अपना भवन बनाने का प्रयत्न कर रही है।

आर्य-नवयुवक-सभा, ललापुरा, काशी—उपर्युक्त सभा का जन्म आज से लगभग तीन वर्ष पूर्व नगर के प्रतिष्ठित आर्य्य स्वर्गीय बाबू गौरीशङ्करप्रसाद जी एडवोकेट के कर-कमलों-द्वारा हुआ।

विशेष कार्य व योजनाएं—आर्य्यकुमार सभा के अन्तर्गत अपना पुस्तकालय तथा वाचनालय है, जो सुचारु-रूप से चल रहा है और आर्य्य-जनता की सेवा कर रहा है। सभा के अन्तर्गत एक आर्य्यवीर-दल है, जिसके द्वारा ग्रहण-मेला इत्यादि अवसरों पर सेवा-कार्य किया जाता है। पुस्तकालय को म्यूनिसिपल-बोर्ड से सहायता मिल रही है। खेद का स्थान है कि ऐसी आर्य्य-

कुमार-सभा के पास अपना भवन नहीं है ! क्या नवयुवकों के हितैषी, दानी सज्जन इस ओर ध्यान देंगे। इस सभा के मन्त्री श्रीयुत बीरबलजी आर्य्य है।

आर्यकुमार सभा मुरादाबाद—शुभ संवत् १९७१ सौरतिथि २१ भाद्रपद तदनुसार ५ सितम्बर १९१४ ई० शनिवार को आर्य्यसमाज-मन्दिर मुरादाबाद (मंडीबास) में श्री बाबू बद्रीप्रसादजी के सुपुत्र बाबू मुरलीमनोहर के प्रयत्न से इस सभा की स्थापना हुई। उक्त बाबूजी के बाहर चले जाने पर शिथिलता आगई, परन्तु दो बार बाबू बाँकेलालजी ने इसमें संचार किया। तब से बराबर अपना कार्य कर रही। सभा की उन्नति में बाबू बाँकेलाल के अतिरिक्त पं० रामचन्द्रजी शर्मा तथा मास्टर रामसुखराय का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

सभासद—आर्यकुमार सभा ने शुरू से अब तक ४५ सभासद बनाये। जिनमें कुमारियाँ भी सम्मिलित हैं।

विशेष कार्य व योजनाएँ—इस सभा ने १९२७ में संयुक्त प्रान्तीय आर्यकुमार सम्मेलन बड़े समारोह से मनाया। आर्यकुमार सभा का अपना पुस्तकालय भी है, जिसमें लगभग ६०० पुस्तकें हैं। जिनका अवलोकन कर आर्यकुमार लाभ उठाते है। यह सभा आर्य-बालकों को सच्चा आर्य-पुरुष बनाने में पूरा यत्न कर रही है।

आर्यकुमार सभा, गाजियाबाद—आर्यकुमार सभा गाजियाबाद की स्थापना लगभग ३५ वर्ष पूर्व हुई थी। प्रारम्भ में इसका कार्य बड़े उत्साह से होता था, पर बीच में कुछ शिथिल होगया। अबसे ३ वर्ष पूर्व महाशय देवीदयाल जी के मन्त्रित्व-काल में कुछ उत्साह दिखाई पड़ा है। इसके अनन्तर म० हीरालाल ने अपने मन्त्रित्व काल में इसका संगठन सन् १६३५ में किया, तब से कुमार सभा का कार्य नियमपूर्वक चल रहा है।

विशेष कार्य—इस कुमार सभा ने वेद-प्रचार और शुद्धि का कार्य विशेष रूप से किया। सभा के वर्तमान प्रधान श्री यमुनाप्रसाद जी तथा मन्त्री श्री०गुरुदयाल जी हैं।

आर्यकुमार सभा, बिजनौर—स्थापना तिथि १० मई १६३५ ई०। इसके मुख्य संस्थापक के नाम निम्नलिखित हो—

श्री० ईश्वरदयाल जी, श्री० कु० कान्तिवीर जी, चौ० नरदेवसिंह जी, चौ० सेठ पूरनचन्द जी तथा श्री० कुं० आदित्यवीर जी है।

सभासद—आर्यकुमार सभा के सभासद आजकल ५५ हैं।

विशेष कार्य—बिजनौर में पहली ही कुमार सभा है जिसने परिषद् से अपना सम्बन्ध जोड़ा है। इससे पहले

कई कुमार सभा खुलीं, बाद में बन्द हो गईं। गरमी के दिनों में प्याऊ लगाना, गंगा स्नान के मौके पर आर्य-कुमार औषधालय व सेवादल का संगठन करके ज़िले की जनता की सेवा करना सभा के मुख्य कार्य हैं। इसी कारण आर्यकुमार सभा का जनता पर अच्छा प्रभाव है।

सभा के वर्त्तमान प्रधान बा० मगनसिंह जी तथा मन्त्री ईश्वरदयाल जी हैं।

आर्यकुमार सभा, सब्ज़ीमण्डी, देहली—यह आर्य-कुमार सभा श्री० चौ० सरदारचन्द्र जी के अतुल परिश्रम तथा आर्य-समाज की सहायता से ता० १२ जौलाई सन् १९३६ को स्थापित हुई। पं० रामसेवक जी श्री० पुत्तूलाल जी तथा बा० महावीर प्रसाद जी ने शुरू में इस की विशेष सहायता की। कुमार सभा का अपना एक छोटा-पुस्तकालय भी है।

इस समय के प्रधान श्री पुत्तूलाल जी तथा मन्त्री श्री० थानसिंह जी हैं।

आर्यकुमार सभा, डी० ए० वी० हाईस्कूल, नई देहली—यह कुमार सभा लगभग ५ साल से स्थापित है। इसके सभासद स्कूल के सारे छात्र हैं।

इसका कार्य सुचारु रूप चल रहा है। कुमार सभा का अपना पुस्तकालय है। बेकारी को दूर करने के लिए कुर्सी बनाने का काम सिखाने का प्रबन्ध कर रखा है।

स्कूल में निर्धन छात्रों की पुस्तकों इत्यादि से सहायता भी यह कुमार सभा करती रहती है ।

सभा के वर्त्तमान प्रधान ला० हरिश्चन्द्र जी तथा संचालक पं० देवव्रत जी धर्मेन्दु हैं ।

आर्यकुमार सभा, मेरठ—इस आर्यकुमार सभा का जन्म सन् १९०६ में आर्य नवयुवक संघ के रूप में हुआ । इसके प्रमुख कार्यकर्त्ता श्री युत परमानन्द व श्रीयुत कान्ति प्रसाद जी हैं ।

विशेष कार्य व योजनाएँ—सभा की ओर से मुफ्त सन्ध्या तथा हवन की पुस्तकें वितरण की जाती हैं । सभा के अधीन एक व्यायामशाला है । जिसमें लाठी, तलवार, भालादि चलाना हिन्दू नवयुवकों को सिखाया जाता है । अपना पुस्तकालय भी कुमार सभा के पास है और जिसमें सौ पुस्तकें हैं, जहाँ आर्यकुमार स्वाध्याय करते हैं ।

सभा के वर्त्तमान प्रधान श्री विश्वम्भरसहाय जी प्रेमी हैं ।

आर्यकुमार सभा, राँची—यह कुमार सभा अखिल भारतीय स्वामी श्रद्धानन्द स्मारक ट्रस्ट के सुयोग्य मन्त्री श्रीमान् पं० धर्मवीर जी वेदालंकार के प्रबल उद्योग और प्ररेणा से सन् १९३६ ई० की १५ वीं अगस्त को चौधरी बाग में स्थापित हुई ।

विशेष कार्य—इतने अल्प समय में इसने आर्य-संस्कृति, सभ्यता आर्य भाषा तथा शुद्धि, संगठन और दलितोद्धार का सिक्का इस नगर में ही नहीं प्रत्युत ग्रामों में भी जमा दिया है। हर्ष का विषय है कि आर्यसमाज तथा कुमार सभा की सहायता के महत्व को जनता समझने लगी है और लोग दिनों दिन इसके अनुयायी बन रहे हैं।

इस सभा के प्रधान श्री जगदीश्वर प्रसाद जी और मन्त्री अनन्तलाल जी 'काव्य-भूषण' हैं।

आर्यकुमार सभा, मल्हारगंज, इन्दौर—इन्दौर आर्य-समाज के प्राण तथा वेदों के पूर्णज्ञाता पं० विद्यानन्द जी हेडक्लर्क गवर्नमेन्ट पुलिस ऑफिसर इन्दौर के सुयोग्य पुत्र श्री विश्वदेव जी ने इन्दौर के आर्य्य-कुमारों को जागृत तथा उन्नतिशील बनाने के लिए ता० १०-१-३७ को १६ कुमारों की उपस्थिति में स्थानिक-आर्य्यसमाज, मल्हारगञ्ज में पं० विद्यानन्द जी की अध्यक्षता में आर्य्यकुमार-सभा इन्दौर की नींव डाली। इसके अतिरिक्त विशेष उल्लेखनीय यह है कि ३ मार्च १९३८ को इसकी रजिस्टी हो गयी।

विशेष कार्य—धर्म-प्रचार तथा नवयुवकों में धर्म के प्रति श्रद्धा करने में यह कुमार-सभा पूरा प्रयत्न कर रही है।

इसके वर्तमानकाल के प्रधान श्री० फतेसिंह जी वर्मा तथा श्री रामकृष्णजी वर्मा मन्त्री हैं।

आर्यकुमार-सभा, मुजफ्फरपुर—आर्यकुमार-सभा मुजफ्फरपुर की स्थापना श्री मुन्नीलालजी साहू के सदुपयोग से १५ जनवरी सन् १६२६ ई० को आर्य्यकुमार-परिषद् के नाम से हुई थी। बाद में कुछ दिनों तक यह परिषद् बाल-सभा के नाम से मशहूर होकर पुनः श्री स्वामी शिवानन्दजी के परामर्शानुसार आर्य्यकुमार-सभा के नाम में परिवर्तित कर दी गई।

विशेष कार्य—आर्य्यकुमार-सभा की ओर से आर्य्यकुमार-छात्रालय तथा साहित्य-कुटीर चल रहे हैं। छात्रावास में निर्धन और असहाय विद्यार्थी लोग वैदिक-धर्म की शिक्षा ग्रहण करते हैं। साहित्य-कुटीर में एक बड़ा वाचनालय है, जिससे सभासद और आम जनता लाभ उठाती रहती है। सभा में विद्यार्थियों के शारीरिक-विकास के लिए खेल-कूद कसरतादि का पूरा प्रबन्ध है।

वर्तमान समय के मन्त्री श्री बहादुरशाहू और प्रधान श्री महावीरप्रसादजी हैं।

आर्यकुमार-सभा नजीमाबाद—यह कुमार-सभा कुछ दिन पहले स्थापित हुई थी, पर बन्द होगयी; परन्तु फिर

सन् १६३८ में पुनर्जीवित हुई। इस सभा के सभासद २० हैं।

आर्यकुमार-सभा, गुलबर्गा—इस सभा की स्थापना सन् १६३८ को हुई है। सभासद १० हैं इसके प्रधान श्री विश्वनाथराव हैं। मन्त्री राजेन्द्रराव हैं। कार्य अच्छा चल रहा है।

आर्यकुमार सभा, अनरौली—इस सभा की स्थापना ४ सितम्बर १६३८ को हुई है, अब यह अपना सम्बन्ध भारतीय आर्य्यकुमार-परिषद् से करना चाहती है। श्री० रघुवीरशरणजी प्रधान हैं।

आर्यकुमार सभा, मुलतान नगर—इसकी स्थापना ६ जुलाई १६३६ ई० को हुई, इसके मन्त्री श्री० धर्मवीर हैं।

आर्यकुमार सभा, इस्लाम नगर, बदायूँ—इस सभा की स्थापना ६ जुलाई १६३६ ई० को हुई, इस सभा के कुल २० सदस्य हैं।

विशेष योजना—आर्य्यकुमार-सभा की तरफ़ से एक पुस्तकालय है तथा एक पूअरफण्ड भी खोल रखा है। जिस में से ग़रीब विद्यार्थियों को सहायता मिलती है। समाज सुधार की ओर भी इस सभा का विशेष ध्यान रहता है।

आर्यकुमार सभा, गोपालगंज, सारन—इस कुमार-सभा की स्थापना को १४ वर्ष होगये हैं। कुछ समय के

लिए इसमें शिथिलता आगई थी, पर अब पुनर्जीवित हो अपना कार्य कर रही है, इसके सभासद डी० ए० वी० स्कूल के सारे छात्र हैं।

आर्यकुमार सभा, बुरहानपुर, सी. पी.—इस सभा की स्थापना प० रामदत्त जी ज्ञानी ने आज से १८ वर्ष पूर्व की थी। परन्तु उनके साथ उनके साथियों के स्थायी रूप से वहाँ न रहने के कारण सभा बन्द होगई। पश्चात् ५ वर्ष के बाद पुनः सभा चालू की गई और तब से अब तक चल रही है।

सभासद—इस सभा के सदस्य इस समय ४४ हैं।

कार्य तथा विशेष योजनाएं—इस सभा के अधीन आर्यवीर दल, गुलाब रजत वाद-विवाद प्रतियोगिता, पुस्तकालय तथा गरीब सभासदों की सहायता का भी प्रबन्ध है, अपने भाई को विधर्मी होने से बचाने के लिए शुद्धि सभा है, तथा ग़रीब बालकों को तथा विधवाओं के लिए आश्रम है। आर्यकुमार छात्रावास भी सभा की ओर से है। जहाँ पर बालकों को वैदिक धर्म की शिक्षा दी जाती है, सभा के उत्साही युवकों के द्वारा यहां पर खादी भण्डार और आयुर्वेद सेवाश्रम है। प्राचीन इतिहास का अन्वेषण करने के लिए एक इतिहास समिति है। सभा के मन्त्री श्री० मोहनचन्द्र जी हैं।

आर्यकुमार सभा, हैदराबाद (दक्षिण)—इस सभा को स्थापित हुए डेढ़ साल होगया। यह अपना सम्बन्ध परिषद् से कर रहे हैं। इसके मन्त्री श्री०प्रतापनारायण दीक्षित हैं।

परिषद् से सम्बन्धित अन्य कुमार सभाओं की सूची—

आर्यकुमार सभा सिरसा, काँठ, कानपुर, मेंडू, बलरामपुर, चँदौसी, देहरादून, पीलीभीत, रामपुर, हरदोई, इलाहाबाद, लखनऊ, चाँदपुर, (स्याऊ शिकोहाबाद, अकबर-पुर, सीतापुर, मवाना कलाँ (मेरठ), पुरैनी (मेरठ), इटावा, रुड़की, बदायूँ, हसनपुर, बड़ौदा, श्रीनगर, जम्मू, सीवान, झरिया, भरतपुर, उदयपुर।

निम्नलिखित स्थानों में भी कुमार सभाएँ हैं—

सूर्यकुण्ड (बदायूँ), सराय तरीन(मुरादाबाद), अकोला देवनगर (करौलबाग़), दिल्ली दयापुर, (पटना), जहानाबाद (गया), बस्ती, मंडला, औरैया (इटावा), सागर, उरई, राठ, पलवल, महू, सुलतान बाज़ार, हैदराबाद (दक्षिण)।

कुमारों और कुमारसभाओं द्वारा गाने-योग्य कुछ भजन

—:०:—

धर्म-जिज्ञासा

हे जगदीश देव ! मन मेरा,
सत्य सनातन-धर्म न छोड़े।
सुख में तुझको भूल न जावे,
नेक न संकट में घबरावे ॥
धीर कहाय अधीर न होवे,
नमक न तार क्षमा का तोड़े।
त्याग जीव के जीवन-पथ को,
टेढ़ा हांक न दे तन रथ को ॥
अति चञ्चल इन्द्रिय घोड़ों की,
भ्रम से उलटी बाग न मोड़े।

होकर शुद्ध महाव्रत धारे,
मलिन किसी का माल न मारे ॥
धार घमण्ड-क्रोध पाहन से,
हां ! न प्रेम रस का घट फोड़े ॥
ऊँचे विमल-विचार चढ़ावे,
तप से प्रतिभा-ज्ञान बढ़ावे ।
हठ तज मान करे विद्या का,
'शंकर' श्रुति का सार निचोड़े ॥

प्रार्थना

जगदीश ज्ञान दाता सुखमूल शोकहारी ।
भगवान् तुम सदा हो निष्पक्ष न्यायकारी ॥
सब काल सर्वज्ञाता सविता पिता विधाता ।
सब में रमे हुए हो तुम विश्व के बिहारी ॥
कुछ तो दया करोगे हम माँगते यही हैं ।
हमको मिले स्वयं ही उठने की शक्ति सारी ॥
करदो बलिष्ठ आत्मा घबरायें ना दुखों से ।
कठिनाइयों का जिससे तर जायें सिन्धु भारी ॥

बाल-वीर

धर धीर जननि ! हम बाल-वीर सब तेरे कष्ट मिटा देंगे।
भारत के मान-सरोवर में, आशा के कमल खिला दगे ॥
विद्वान, वीर, ब्रह्मचारी बन, आज्ञाकारी उपकारी बन।
सब तेरे चरण-पुजारी बन, केसरिया बाना धारण कर।
हम तन हित जान जुटा देंगे ॥ धर० ॥
आलस को मार भगा देंगे, उद्यम का शंख बजा देंगे।
बिछुड़ों को पुनः मिला देंगे, भारत के बच्चे-बच्चे को,
सेवा का पाठ पढ़ा देंगे ॥ धर० ॥

भारत-बच्चा

भारत बच्चा नाम हमारा, देश की सेवा काम हमारा।
जितने आसमान में तारे, उतने ही साथी करता हमारे।
जो चाहें सो कर सकते हैं, नहीं किसी से डर सकते हैं।
बहा प्रेम की गंगा देंगे, मिटा जगत् में दंगा देंगे।

हमेशा रहने वाला नाम

अहदे तिफली में ये ख्वाहिश थी कि मेरा नाम हो।
सबका मैं प्यारा बनूं और नेक मेरा नाम हो।

रेग पर एक रोज़ जाकर मैंने लिखा अपना नाम।
मुझको ये उम्मेद थी क़ायम रहेगा ये मुदाम॥
आया एक झोंका हवा का नाम मेरा मिट गया।
मेरे दिल को दोस्तो बेहद रञ्जो ग़म हुआ॥
फिर तो मैंने एक दरख़्ते नौ पर नाम अपना लिखा।
इससे उम्मेद थी क़ायम रहेगा ये सदा॥
बादे सर-सर ने इसे आखिर गिराया चाक पर।
आलमें बहशत हुआ तारी दिले ग़म नाक पर॥
जाके लौहे संगमरमर पर लिखा बारे दिगर।
नाम अपना ताअबद क़ायम रहे बा करोफर॥
ये सितमपेशा फलक फिर दरपै रञ्जूर था।
आया एक दिन ज़लज़ला पत्थर भी चकना चूर था॥
होके फिर मायूस अपने दिल से ये मैंने कहा।
तू ही बतला दे कि आखिर मैं करूं रहबर क्या॥
वो लगा कहने तुझे होना है गर हरदिल अज़ीज़।
नाम अपना दूसरों के दिल पै लिख ऐरो ! बातमीज़॥

ईश्वर-महिमा

ऐ समझे बूझे बिन सूझे।
जाने-पहिचाने बिन बूझे॥

बे आसों की आस है तू ही।
जागते सोते पास है तू ही॥
दिल में है जिनके तेरी बड़ाई।
गिनते हैं वे पर्वत को राई॥
सब से अनोखे सब से निराले।
आँखों से ओझल दिल के उजाले॥
ऐ अन्धों की आँखों के तारे।
ऐ लङ्गड़े लूलों के सहारे॥
नाव जहाँ की खेनेवाले।
दुख में धीरज देनेवाले॥
जब और तब तुझसा नहीं कोई।
तुझ से सब तुझसा नहीं कोई॥
जोती है तेरी जल और थल में।
वास है तेरी फूल और फल में॥
तू है अकेलों का रखवाला।
तू है अँधेरे घर का उजाला॥
वैद निरासे बीमारों का।
गाहक मन्दे बाजारों का॥
सोच में दिल बहलानेवाला।
विपता में याद आनेवाला॥
पूरब पच्छिम दक्खिन उत्तर।
बख़शिश तेरी ईश है घर घर॥

प्याउ लगी है सब के लिये यॉं।
ख्वाह है हिन्दू ख्वाह है मुसलमॉं॥
हिलते हैं पत्ते तेरे हिलाए।
खिलती हैं कलियाँ तेरे खिलए॥

हमें दो माँ ऐसा बरदान

सच्चे आर्यकुमार बने हम तेजस्वी बलवान्॥ १॥
विद्या पढ़ें, नम्रता धारें, बने सुशील महान्।
योग्य बनें धन धर्म कमावें हों बल तेज विधान॥ २॥
माता-पिता, तथा गुरुजन का करें सदा सम्मान।
सहपाठी सब प्रेम भाव से बातें भ्रात समान॥ ३॥
छूत-अछूत बखेड़ा छोड़ें, छोड़ें मिथ्या मान।
दुर्गण दूर करें हम सारे, बनें सुभग गुणवान्॥ ४॥
बुद्धिमान हों, शक्तिमान हों, हों धनवान सुजान।
चरण-कमल के तेरे माता! हों सेवक शुचिमान॥ ५॥
चाहे जहाँ रहें पर हमको हो भारत का ध्यान।
सुने सदा ही निज कानों से सुख-स्वराज्य की तान॥ ६॥
ऐसे पथ से हमें ले चलो, पावें नित कल्याण।
करें दीनजन त्राण बनें सब भारत के प्रिय प्राण७॥॥

परीक्षाओं की पाठ-विधि

(सं० १९९५ वि० से पुनः परिवर्तन तक)

❀ वैदिक धर्म-विशारद परीक्षा ❀

प्रथम खण्ड

प्रथम प्रश्न-पत्र   पूर्णाङ्क १००   समय ३ घण्टे

१—आर्योद्देश्य रत्नमाला (अङ्क २०) ।

२—वैदिकधर्म प्रवेशिका (अङ्क ४०) बा० रामचन्द्र एम०ए० कृत।=)

३—धार्मिक शिक्षा भाग ५, ६ (अङ्क ४०) आर्य साहित्य मण्डल ≶)
प्रति भाग

द्वितीय प्रश्न-पत्र   पूर्णाङ्क १००   समय ३ घण्टे

१—व्यवहार भानु (अङ्क ३०) =)।।

२ सत्यार्थ प्रकाश समुल्लास २ और १० (अङ्क ३०) ।)।

३—उपदेशामृत भाग १—२ (अङ्क ४०) ।≶)

द्वितीय खण्ड

प्रथम प्रश्न-पत्र   पूर्णाङ्क १००   समय ३ घण्टे

१—सत्यार्थ प्रकाश समु० ३, ४, ५, ७, ८ (अङ्क ६०)।

२—धार्मिक शिक्षा भाग ७, ८ (अङ्क ४०) ।–) प्रति भाग

द्वितीय प्रश्न-पत्र   पूर्णाङ्क १००   समय ३ घंटे

१—कर्त्तव्य-दर्पण (अङ्क ४०) =)।।

२—आर्य समाज के जगमगाते हीरे (अङ्क ४०) ।)

३—उपदेशामृत भाग ३ (अङ्क २०) प्रो० सुधाकर एम०ए०कृत ।।)

तृतीय खण्ड

प्रथम प्रश्न-पत्र पूर्णाङ्क १०० समय ३ घण्टे

१—उपदेशामृत भाग ५ (अंक २०) ।⁼)।
२—बाल वेदामृत (अंक ४०) प्रो० किशोरीलाल गुप्त एम० ए० ।⁼)
३—ईश और केन उपनिषद् (अंक ४०) ⁼)।।

द्वितीय प्रश्न-पत्र पूर्णाङ्क १०० समय ३ घण्टे

१२—सत्यार्थ प्रकाश समु० ६ और ११ (अंक ४०)
—दर्शनानन्द ग्रन्थ संग्रह पूर्वार्ध (अंक ६०) १।)

तृतीय प्रश्न-पत्र पूर्णाङ्क १०० समय ३ घण्टे

१—आर्य-धर्म (अंक २०) ।)
२—धार्मिक शिक्षा भाग ६—१० (अंक ४०) ।⁼) प्रति भाग
३—अमर जीवन (अंक ४०) डा० केशवदेव शास्त्री कृत १)

चतुर्थ प्रश्न-पत्र पूर्णाङ्क १०० समय ३ घण्टे

निबन्ध किसी धार्मिक विषय पर ।

सिद्धान्त शास्त्री

प्रथम प्रश्न-पत्र पूर्णाङ्क १०० समय ३ घण्टे

१—ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका ।।)
२—वैदिक सम्पत्ति २)

द्वितीय प्रश्न-पत्र पूर्णाङ्क १०० समय ३ घण्टे

१—वैदिक काल का इतिहास (पं० आर्य मुनि) १।।।)
२—न्याय दर्शन ।।।)
३—कठ, प्रश्न और श्वेताश्वेतर उपनिषद् ⁼)।। प्रत्येक

तृतीय प्रश्न-पत्र पूर्णाङ्क १०० समय ३ घण्टे

१—आस्तिकवाद (पं० गङ्गाप्रसाद उपाध्याय एम० ए०) १)
२—सृष्टि-विज्ञान (मा० आत्माराम अमृतसरी) १।।)
३—विश्व की पहेली (बा० पूर्णचन्द्र एडवोकेट) ।।।)

चतुर्थ प्रश्न-पत्र पूर्णाङ्क १०० समय ३ घण्टे

१—सत्यार्थ प्रकाश उत्तरार्द्ध ।

२—धर्म का आदि स्रोत (प० गङ्गाप्रसाद चीफ़जज टिहरी) १)

३—धम्मपद, बाइबिल, कुरान और पुराणों का साधारण ज्ञान।

❀ परीक्षाओं के नियम ❀

१—प्रथम तथा द्वितीय खण्ड में संस्कृत के श्लोक, मन्त्र तथा अन्य वाक्यों का अर्थ नहीं पूछा जायेगा।

२—उत्तर देवनागरी अक्षरों मे ही लिखने होंगे।

३—परीक्षाएँ प्रतिवर्ष दिसम्बर मास के प्रथम सप्ताह में हुआ करेंगी ।

४—परीक्षा में वही छात्र सम्मिलित हो सकेंगे, जिनके आवेदन-पत्र तथा परीक्षा-शुल्क ३० अक्टूबर तक कार्यालय में आ जाया करेंगे। छपे हुए आवेदन-पत्र मन्त्री कार्य्यालय से प्राप्त हो सकते हैं।

५—परीक्षा शुल्क इस प्रकार है—प्रथम खण्ड ।=), द्वितीय खण्ड ॥), तृतीय खण्ड १) और सिद्धान्त-शास्त्री २)।

६—प्रथम तथा द्वितीय दोनों खण्डों की परीक्षा एक साथ भी दी जा सकती है।

७—द्वितीय खण्ड उत्तीर्ण करने पर ही परीक्षार्थी तृतीय खण्ड में बैठ सकेंगे, परन्तु परीक्षा-समिति विशेष अवस्थाओं में किसी परीक्षार्थी को इस नियम से मुक्त भी कर सकती है।

८—तृतीय खण्ड में उत्तीर्ण छात्र को "वैदिक-धर्म विशारद" और अन्तिम परीक्षा में उत्तीर्ण छात्र को "सिद्धान्त-शास्त्री की उपाधि प्रदान की जाती है।

९—सिद्धान्त शास्त्री-परीक्षामें वही छात्र बैठ सकेगा, जो नीचे लिखी परीक्षाओं में से किसी एक परीक्षामें उत्तीर्ण हो।

(१) वैदिक-धर्म विशारद।

(२) सिद्धान्त-भूषण तथा सिद्धान्त-रत्न (पंजाब)।

(३) किसी विश्वविद्यालय तथा गुरुकुल के स्नातक (ग्रेजुएट)।

१०—परीक्षा-केन्द्र किसी ऐसे स्थान पर, जहाँ न्यून-से-न्यून ५ परीक्षार्थी हों, बनाया जा सकता है, जबकि स्थानीय आर्य्यसमाज के प्रधान वा मन्त्री वा कोई अन्य प्रतिष्ठित सज्जन केन्द्र व्यवस्थापक बनना स्वीकार कर लें।

११—केन्द्र में परीक्षा के प्रबन्ध तथा सञ्चालन का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व-व्यवस्थापक महोदय पर ही होगा। उनके पास सब सूचनाएँ कार्य्यालय से समय-समय पर पहुँचती रहेंगी। उन्हें अपना पूरा पता और पास का रेल्वे-स्टेशन व डाक-घर का नाम कार्यालय में पहिले ही भेज देना चाहिये।

१२—वैदिक-धर्म विशारद के तीनों खण्डों में ६० वा अधिक अङ्क प्रतिशत पानेवाले प्रथम श्रेणी में, ४५ वा अधिक प्रतिशत पानेवाले द्वितीय श्रेणीमें और ३३ अङ्क वा अधिक प्रतिशत पानेवाले तृतीय श्रेणीमें उत्तीर्ण होंगे।

१३—सिद्धान्त शास्त्री-परीक्षा में ४० से ४९ तक तृतीय श्रेणी ५० से ६४ तक द्वितीय श्रेणी तथा ६५ वा अधिक प्रतिशत अङ्कों पर प्रथम श्रेणी मानी जायेगी।

१४—प्रत्येक परीक्षा में सर्वप्रथम, द्वितीय तथा तृतीय आनेवाले छात्रों को परिषद् की ओर से पदक, पुरस्कार तथा सब उत्तीर्ण छात्रों को प्रमाण-पत्र अथवा उपाधि-पत्र प्रदान किये जाते हैं।

वैदिक धर्म-परीक्षा

वर्त्तमान परीक्षा-केन्द्र तथा उनके व्यवस्थापक

केन्द्र	व्यवस्थापक
अलीगढ़	हैडमास्टर, डी० ए० वी० हाईस्कूल
टिस्वा (बरेली)	पं० मुन्नालाल आर्य, प्रायमरीस्कूल
हरदोई	श्री० चिरञ्जीलाल आ०स० रेल्वे गंज
पीलीभीत	पं० रामचन्द्र शर्मा आर्य्यसमाज
भूड़ बरेली	प्रधान आर्य्य-समाज
जलाली (अलीगढ़)	प्रधान आर्य्य समाज
एटा	मन्त्री आर्यसमाज
गंज (बिजनौर)	स्वामी केवलानन्द संस्कृत विद्यालय
कल्याण (बम्बई)	शीतलप्रसाद मास्टर आ० स० कल्याण
घासीपुरा	आचार्य गुरुकुल घासीपुरा (मुज़फ्फरपुर)
सरायतरीन	मंत्री आ० सा० सरायतरीन हयात-नगर मुरादाबाद
सं० वि० अलीगढ़	पं० फूलचन्द मैथिल सं० पा० राम-घाट रोड
उरई	हैडमास्टर डी० ए० वी० हाईस्कूल
खँडवा	जगदीश वानप्रस्थी आर्य्यसमाज
खानपुर (कोटा)	रूपराम शर्मा, हैडमास्टर हिन्दी मिडिल स्कूल
पछार (ग्वालियर)	प्रधान आर्य्यसमाज
लातूर (निजामस्टेट)	मंत्री आ० प्र० नि० सभा उदूगीर
इस्लामनगर (बदायूँ)	प्रधान आर्य्यसमाज
इटावा	गोपीलाल निजामत इटावा (कोटास्टेट)

केन्द्र	व्यवस्थापक
मुज़फ्फ़रनगर	हैडमास्टर डी० ए० बी० हाईस्कूल
बदायूँ	हैडमास्टर हिन्दू हाईस्कूल
बाराँ (कोटा)	शिवचरनलाल शर्मा प्रधान आ० स०
शाहपुरा	पं० रमेशचन्द्र शास्त्री ब्रह्मविद्यालय
किशनगंज (कोटा)	श्री छगनलाल है० मा० प्रायमरीस्कूल
अतरौली (अलीगढ़)	है० मा० हाईस्कूल
काशी	है० मा० डी० ए० बी० हाईस्कूल
नागपुर	के० बी० शक्ल D. 23 B. अजनी
प्रयाग	हैडमिस्ट्रैस आ०क० पाठशाला हाईस्कूल
बाँदा	मुख्याध्यापिका आ० क० पाठशाला
लखनऊ	श्रीनरेन्द्रनाथ शास्त्री,डी०ए०बी० हाईस्कूल
माँगरौल (कोट)	श्रीनिवास मिश्र, है० मा० मि० स्कूल
कानपुर	हैडमास्टर डी० ए० बी० हाईस्कूल
देहरादून	कृष्णदेव, एम० ए०, डी० ए० बी० कालेज
अजमेर	हैडमास्टर डी० ए० बी० हाईस्कूल
प्रयाग	रामकिशोरसिंह, मैनेजर आदर्श कन्या पाठशाला, रानीमण्डी
आबू	मन्त्री आर्यसमाज
बड़ौदा	श्रीकेशवदेव,हिन्दी ज्ञानमन्दिर,नागरबाड़ा
नौशेरा फ़ीरोज 'सिंध'	गोविन्दराम P. Moteys I. C. incharge A. V. classes
बुलन्दशहर	पं०विष्णुस्वरूप शास्त्री,डी०ए०बी० हाईस्कूल
सीतापुर	पं० धर्मेन्द्रनाथ शास्त्री आ० स०
सीवान	हैडमास्टर, डी० ए० बी० हाईस्कूल

क्षमा याचना

पुस्तक के बीच बीच में परिषद् के भूतपूर्व प्रधानों आदि के चित्र दिये गये हैं। कुछ विशेष कारणों से कई अत्यन्त ज़रूरी चित्र समय पर न मिलने के कारण नहीं दिये जा सके हैं। आशा है पाठक इस त्रुटि को क्षमा करेंगे।

ओ३म्

आर्य्यसमाज के नियम

—*—

१—सब सत्यविद्या और जो पदार्थविद्या से जाने जाते हैं उन सबका आदि मूल परमेश्वर है।

२—ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है। उसी की उपासना करनी योग्य है।

३—वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्य्यों का परम धर्म है।

४—सत्य ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।

५—सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिएँ।

६—संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

७—सब से प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार, यथायोग्य वर्त्तना चाहिए।

८—अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये।

९—प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिये किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये।

१०—सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिये और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।